महान् जीवन की आधारशिला

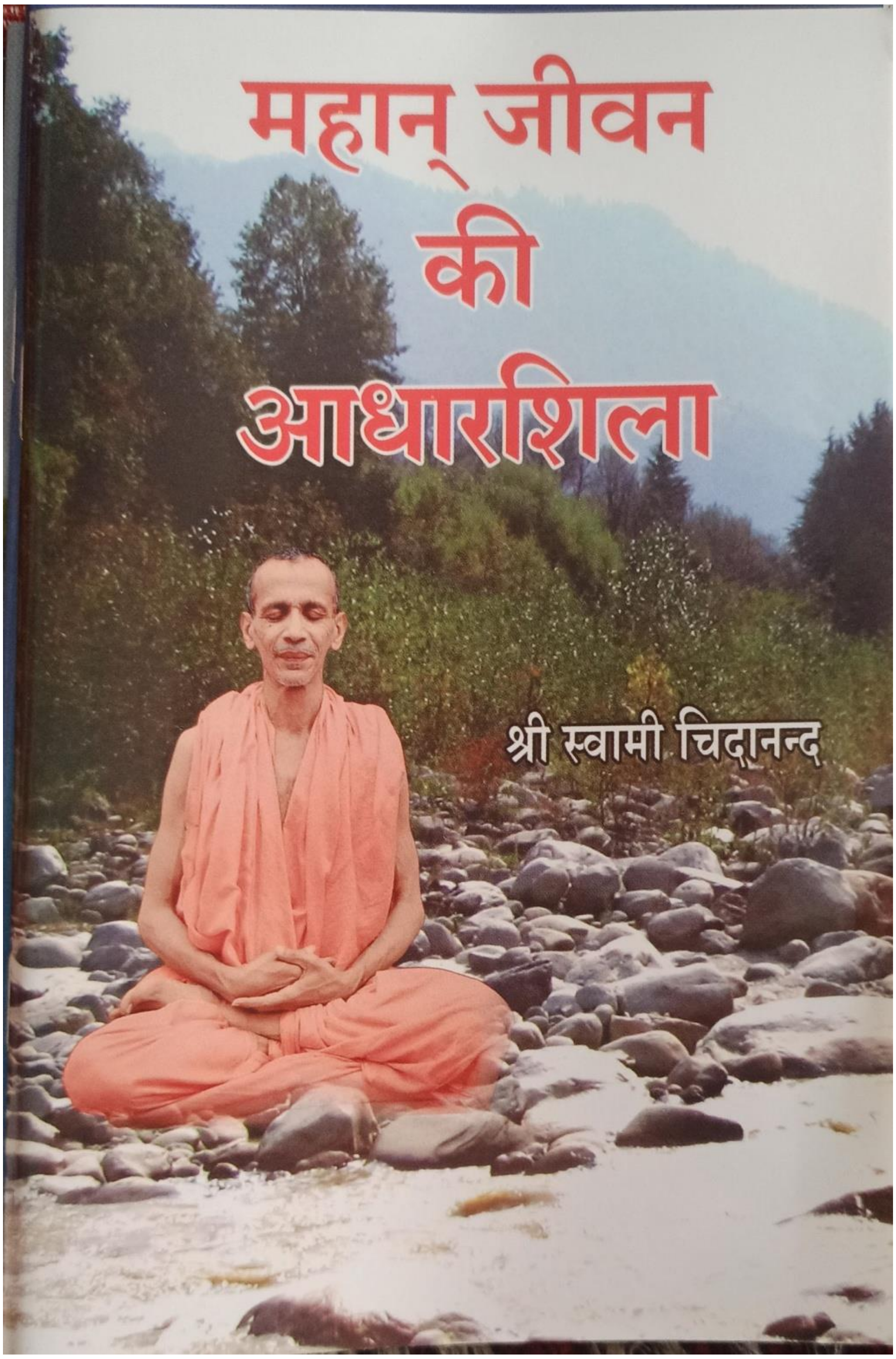

श्री स्वामी चिदानन्द

महान् जीवन की आधारशिला

श्री स्वामी चिदानन्द

MEDITATE E LOVE THE DIVINE ELIFE! SOCIETY

संकलन
शिवानन्द मातृ सत्संग

प्रकाशक

द डिवाइन लाइफ सोसायटी
पत्रालय शिवानन्दनगर - २४९१९२
जिला: टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड (हिमालय), भारत
www.sivanandaonline.org, www.dlshq.org

प्रथम संस्करण : २०१४
द्वितीय संस्करण : २०१९

(२,००० प्रतियाँ)

© द डिवाइन लाइफ ट्रस्ट सोसायटी

निःशुल्क वितरणार्थ

"द डिवाइन लाइफ सोसायटी, शिवानन्दनगर' के लिए
स्वामी पद्मानाभानन्द द्वारा प्रकाशित तथा उन्हीं के द्वारा 'योग-वेदान्त
फारेस्ट एकाडेमी प्रेस, पो. शिवानन्दनगर-२४९१९२,
जिला टिहरी गढ़वाल, उत्तराखण्ड' में मुद्रित ।
For online orders and Catalogue visit: disbooks.org

FOREWORD

Om Namo Narayanaya
Om Namo Bhagavate Sivanandaya
Om Sri Ram Jaya Ram Jaya Jaya Ram

Worshipful Sri Swami Chidanandaji Maharaj had started the SIVANANDA MATRI SATSANGA, in Sivananda Ashram, Headquarters on 8th May 1989 Akshaya Tritiya Day. Swamiji Maharaj not only inspired, encouraged, enquired about its activities but also gave specific instructions for Swadhyaya and blessed the Matri Satsanga by his Holy attendance frequently.

I am immensely happy about this noble deed of publication of two booklets in English and two booklets in Hindi on the occasion of the Silver Jubilee Celebration of the Sivananda Matri Satsanga this year. Each booklet contains short but elevating and inspiring 25 Articles by Sri Gurudev Swami Sivanandaji Maharaj and Sri Swami Chidanandaji Maharaj. It is respectfully offered to the womankind of today as well as tomorrow. I hope this will be found useful and beneficial to one and all. My best wishes for the success and wide circulation of these booklets.

May the Grace of the Almighty Lord shower upon the members of the Sivananda Matri Satsanga, which is active and regularly attended by the lady inmates and visitors to the Holy Ashram.

President The Divine Life Society

विषय-सूची

श्री स्वामी विमलानन्दजी महराज का FOREWORD 2
हार्दिक प्रार्थना........ 4
रजत जयन्ती........ 5
मंगल निवेदन........ 6

प्रबुद्ध प्रबोधन 7
विशुद्ध सत्त्व-स्वरूपिणी-भगवती सरस्वती 9
शुद्ध मनस् 10
अक्षय धरोहर 12
किशोर-किशोरियों से 14
स्वाध्याय-प्रयोजन 15
जीवन-आदर्श 17
हिन्दू विवाह-एक आध्यात्मिक मिलन 18
परिणय-प्रतिज्ञाएँ 20
गृहलक्ष्मी 21
भारतीय सन्नारी 23
धन्य है यह गृहस्थाश्रम 23
उत्कृष्टता-स्वधर्म-पालन की 25
सच्चरित्रता की शक्ति 27
पुनीत संस्कार-प्रदात्री 28
भविष्य-निर्मात्री 30
सर्वं शक्तिमयं 32
वास्तविक आनन्द 33
नित्य सुख 35
भक्ति का स्वरूप 36
प्रकाश-स्तम्भ बनें 38
एक अद्वितिय देन-विश्व-प्रार्थना 40

हार्दिक प्रार्थना

हार्दिक प्रार्थना हम करें माँ। शक्ति-विधायनी दुर्गा हे!
मन की उच्चता, शक्ति की श्रेष्ठता,
कर्मों की उत्कृष्टता के लिए-हार्दिक प्रार्थना हम करें माँ!

ज्ञान-विज्ञान-प्रदायिनी सरस्वती हे!
मन की निर्मलता, बुद्धि की प्रबुद्धता,
चित्त की शुचिता, अन्तःकरण की पवित्रता के लिए- हार्दिक प्रार्थना हम करें माँ!

सौभाग्य-दायिनी लक्ष्मी हे!
तन की आरोग्यता, मन की स्वस्थता, प्राणशक्ति की परिपुष्टता,

धन की परिशुद्धता के लिए- हार्दिक प्रार्थना हम करें माँ!

सद्‌गुरुस्वरूपा शिव-शक्ति है!
जीवन-लक्ष्य की परिपूर्णता, आदर्शों की भव्यता;
दिव्य जीवन की सफलता के लिए- हार्दिक प्रार्थना हम करें माँ!

हे पराशक्ति माँ!
अपने कृपा-वर्षण से आप्लावित करती रहें-समूची मानव-जाति को
विश्व की सम्माननीया सन्नारियों को,
आर्य कन्या-कुमारियों को, सबल सती किशोरियों को।

संस्कृति के उत्थान से पूर्ण करतीं जो निज दायित्व को,
निज 'निर्मल नारीत्व' से, औ' 'सुशील स्त्रीत्व' से।

धन्य करतीं जो वसुन्धरा को,
अपने 'महनीय मातृत्व' से, औ' 'उज्ज्वल दिव्यत्व' से।

- शिवानन्द मातृ सत्संग

रजत जयन्ती

हृदय आराध्य सद्‌गुरुदेव हे!
स्वीकारें हमारे वंदन औ' दिव्य ज्ञान-मुक्ता-संचयन-
'शिवानन्द मातृ सत्संग' -रजत जयन्ती, अक्षय तृतीया का, और
मंगलमय पावन अवसर श्री स्वामी चिदानन्द जन्मशती महोत्सव का।

अर्पित है श्रीचरणों में प्रतिफल इन्हीं की संकल्प शक्ति का,
जो मूर्त रूप है आपकी अपूर्व प्रेरणा शक्ति का।

हो शिक्षाप्रद यह कन्या कुमारियों के लिए,
प्रेरणाप्रद समस्त सन्नारियों-सद्‌गृहणियों के लिए,
लाभप्रद राष्ट्रगौरव-निर्मात्री माताओं के लिए,
कल्याणप्रद समूची मानव-जाति के लिए,
उनका मनोबल-आत्मबल बढ़ाने के लिए
प्रस्तुत है "प्रबुद्ध प्रबोधन" ।

- शिवानन्द मातृ सत्संग

मंगल निवेदन

करुणामयी माँ के चरण कमलों में साष्टांग प्रणिपात। भगवती पार्वती, लक्ष्मी तथा सरस्वती-रूपा पराशक्ति माँ के श्रीचरणों में क्षद्धा एवं भक्तिपूर्ण प्रणाम।

हे माँ! विश्व की प्रत्येक नारी तुम्हारा ही अंश है, तुम्हारा ही वरदान है, तुम्हारी ही सन्तान है। उसकी इच्छा-शक्ति, उसकी क्रिया-शक्ति, उसकी ज्ञान-शक्ति तुम्हीं हो। तुम ही उसकी सृजन-शक्ति हो। सतीत्व-बल का स्रोत भी तुम्हीं हो। उसका पवित्र कौमार्य अक्षुण्ण है तो तुम्हीं से, वह महिमान्वित है तो तुम्हारी महिमा से, वह गौरवान्वित है तो तुम्हारी गरिमा से, उसका समग्र व्यक्तित्व उज्वल है तो तुम्हारी ही दी हुई विविध शक्तियों से ही।

नारी पुत्री रूप में है अथवा भगिनी रूप में, गृहलक्ष्मी रूप में है अथवा सहधर्मिणी रूप में, जननी रूप में है अथवा मातृरूप में उसके इन सभी रूपों में हे माँ! तुम्हारी ही तो अभिव्यक्ति है। वह गृह की श्री तथा शोभा है तो तुम्हारी ही कृपा-शक्ति से। उसके मातृत्व का साफल्य है तो तुम्हारी ही संकल्प-शक्ति से। उसका कुमारी जीवन निष्कलंक है तो तुम्हारी ही वात्सल्य-शक्ति से। नारी धर्म तुम्हारी ही तो करुणा पर अवलम्बित है। उसके नारीत्व की पूर्णता निर्भर है तुम्हारी शुभाशीषों पर।

जय माँ भगवती! सब पर, समस्त नारी-जगत् पर, मानव जाति पर आपके अनुग्रह की वृष्टि सतत होती रहे! आप अपने कृपा कटाक्ष से सबको कृतार्थ करें!

जय माँ! हरि ॐ तत्सत्!

-स्वामी चिदानन्द

प्रबुद्ध प्रबोधन

ज्योतिर्मय सन्तान !

स्मरण रखिए कि इसी वर्तमान अवधि में ही आप अपना भविष्य बना रहे हैं। आपके जीवन के प्रथम सोपान का, विद्याध्ययन काल का यह अद्‌भुत समय उसी प्रकार से है, जैसे कुम्हार के हाथ में मुलायम गीली मिट्टी। कुम्हार उसे कुशलतापूर्वक मनोवांछित उचित स्वरूप और आकार देता है। इसी प्रकार आप भी अपने जीवन को, अपने चरित्र को, शारीरिक स्वास्थ्य और शक्ति को अर्थात् अपने समस्त स्वभाव को जिस प्रकार आप चाहते हैं, उस प्रकार ढाल सकते हैं। और, इसे आप अभी कर डालिए।

इस महान् कर्तव्य को समझिए और स्वयं को ढालने के इस अद्‌भुत अधिकार का अनुभव कीजिए। इसमें साहसपूर्वक जुट जाइए। ईश्वर की कृपा-वृष्टि आप पर है। वह सदैव आपकी सहायता तथा पथ-प्रदर्शन करने को तैयार हैं।

संसार को आपसे आशाएँ हैं। आपके अग्रज भी आपसे आशा रखते हैं। आप स्वयं में दृढ़ आस्था रखते हुए अपने आशापूर्ण निश्चय, संकल्प और सदुद्देश्यों को आत्म-संस्कार के सुन्दर कार्य में लगा दें। इसके द्वारा सचमुच ही आपको परम सन्तोष और परिपूर्णता मिलेगी। केवल आपको ही नहीं प्रत्युत उनको भी जो इसके आकांक्षी होंगे। अपने जीवन को आकार देना वास्तव में आपके ही हाथ में है।

धर्माचरण करें, धर्म में निरन्तर संलग्न रहें। धर्मनिष्ठ रहें। सदैव धर्म के साकार रूप बन कर उद्भासित रहें। अच्छाई को अपना अंग बना लें। युवावस्था इस महान् प्रक्रिया के लिए ही है। विद्यार्थी-जीवन इस प्रक्रिया का सक्रिय विकास और पूर्ति है। आपके समय की यह अवधि जीवन की महत्त्वपूर्ण और अपरिहार्य इस प्रक्रिया के लिए पूर्ण अनुकूलन और उपयुक्त क्षेत्र उपस्थित करती है। शिक्षार्थी जीवन का यही विशेष महत्त्व और यही परम मूल्य है। यह दिव्य व्यक्तित्व के विकास का प्रतीक है। यही आत्म-विकास है। यही आत्म-निर्माण है।

सफल जीवन के भाव और अर्थ को समझने का प्रयत्न करें। जब सफलता की बात जीवन के सन्दर्भ में करते हैं, तो इसका आशय यह नहीं है कि आप जो-कुछ करें, सबमें सफलता पायें और न सब इच्छाओं की पूर्ति हो जाना या वस्तुओं को प्राप्त कर लेना ही इसका अर्थ है। यश या पद पा लेने अथवा अधुनातन सभी प्रकार के फैशनों का अनुकरण करते हुए स्वयं को अति-आधुनिक दिखाना भी इसका आशय नहीं है। वास्तविक सफलता का सार है कि आप अपने को कैसा बनाते हैं? यह जीवन का वह आचरण है, जिसे आप विकसित करते हैं, वह चरित्र है, जिसे आप निर्मित करते हैं और तदनुरूप आप बन जाते हैं। सफल जीवन-यापन का यही केन्द्रीय अर्थ

है। अतः आप देखेंगे कि यह आवश्यक तथ्य जीवन में सफलता पाने का प्रश्न उतना नहीं है, जितना जीवन को सफल बनाने का है। ऐसा सफल जीवन वही है जो आपको आदर्श और महान् बनाये। आपकी सफलता इससे नहीं मापी जाती है कि आपको कितना मिला, बल्कि इससे मापी जाती है कि आप कैसे बने हैं, आपकी जीवन पद्धति कैसी है तथा आप कैसा कर्म करते हैं। इस पक्ष को चिन्तन में लायें और परम सुख प्राप्त करें।

सिद्धि और सफलता की देवी सरस्वती की कृपा आप सब पर रहे।

-स्वामी चिदानन्द

विशुद्ध सत्त्व-स्वरूपिणी-भगवती सरस्वती

या कुन्देन्दुतुषारहारधवला या शुभ्रवस्त्रावृता

या वीणावरदण्डमण्डितकरा या श्वेतपद्मासना।
या ब्रह्माच्युतशंकरप्रभृतिभिर्देवैः सदा वन्दिता
सा मां पातु सरस्वती भगवती निःशेषजाड्यापहा ।।

जो कुन्द पुष्प, चन्द्रमा तथा तुषार-माला की भाँति धवल हैं, जिन्होंने शुभ्र वस्त्र धारण किया है, जिनके हाथ मनोहर वीणा से सुशोभित हैं, जो श्वेत कमल पर विराजमान हैं, जो सर्वदा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि देवों से पूजित हैं तथा जो समस्त जड़ता का नाश करने वाली हैं-वे भगवती सरस्वती मेरा पालन करें।

परमात्मा की पराशक्ति महासरस्वती का चित्रण शुभ्र-श्वेत वसन से परिवेष्टित एवं विशुद्ध निर्मल सौन्दर्य की पराकाष्ठा के रूप में किया गया है।

माँ की शुभ्रता की तुलना की गयी है कुन्द अर्थात् कुमुदिनी पुष्प की श्वेतता से। माँ का उज्ज्वल सौन्दर्य निर्मल चन्द्रमा के समान है। माँ की विशुद्धता की तुलना तुषार-माला (हिम-श्रृंखला) की धवलता से की गयी है। विश्व की इन सर्वोत्कृष्ट निर्मल तथा उज्ज्वल वस्तुओं से माँ की धवलता की तुलना की जाती है। शुभ्र श्वेत वस्त्रों से आवृत माँ की इस उज्वल झाँकी का वर्णन यह बताने के लिए किया गया है कि माँ पूर्ण विशुद्ध सत्त्व की घनीभूत रूप हैं; क्योंकि वह परम ब्रह्म का प्रथम आविर्भाव हैं।

माँ सरस्वती प्रणव-स्वरूपिणी हैं। इस विशुद्ध शब्द प्रणव को प्रकट करने का यन्त्र (वाद्य) वीणा उनके करकमलों में सुशोभित है।

माँ के हाथों में सुन्दर स्फटिक माला तथा पुस्तक रूप में वेदग्रन्थ हैं। पुस्तक तथा माला हाथ में ग्रहण करने का भाव यह है कि परा तथा अपरा तत्त्व का समस्त ज्ञान उनके करतलगत है। ब्रह्मा वैदिक ज्ञान के प्रतिनिधि तथा उसके मूल भण्डार हैं। माँ सरस्वती वैदिक ज्ञान का व्यक्त स्वरूप हैं। इसी से माँ ब्रह्मज्ञान के तत्त्वों को समाविष्ट करने वाले वेदग्रन्थ को अपने हाथ में धारण किये हुए हैं। वेद का सत्य उपलब्ध होता है-योगाभ्यास से, जिसका प्रतीक है माँ के दाहिने हाथ की शुद्ध स्फटिक माला। माला योगाभ्यास के कार्यान्वयन की सूचक है। वेद की ज्ञानशक्ति एवं योग-साधना की क्रियाशक्ति, ये दोनों मिल कर माँ का पूर्ण रूप हैं। विश्व में जो भी सृष्टिकार्य चल रहा है, उसका मूल तत्त्व माँ सरस्वती ही हैं।

इस प्रकार वैज्ञानिकों की गवेषणाशक्ति माँ ही हैं। कविता के उपासक कवियों की कवित्वशक्ति माँ ही हैं। वही संगीतकार, चित्रकार, शिल्पकार तथा अन्य ललित कलाओं के कलाकारों की कलाविषयक प्रतिभा हैं। गहन अन्वेषण-काल में किये हुए वैज्ञानिकों के आविष्कार में भी माँ ही हैं। बाह्य प्रकृति के तीव्र बौद्धिक चिन्तन से जो भी नवसर्जन होता है, वह भी माँ का स्वरूप ही है। इन आविष्कारों के परिणामस्वरूप उत्पन्न विविध पदार्थों में भगवती सरस्वती ही विलास करती हैं।

माँ सभी प्राणियों में वाक्रूप में प्रकट होती हैं। माँ वाक्शक्ति हैं। 'वाणी' माता सरस्वती का ही स्वरूप है। नियमपूर्वक मौन द्वारा वाणी का संयम करना भी भगवती सरस्वती की आराधना है। इस प्रकार माँ की वाक्शक्ति का संचय करने से शक्ति का संग्रह होता है तथा मन अन्तर्मुखी हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप विवेक, विचार तथा आत्मविश्लेषण करना सम्भव हो पाता है। यह व्यवहार में अनुभूत ज्ञान है।

वाक्शक्ति की पवित्रता बनाये रखने का महान् उत्तरदायित्व सभी नर-नारियों पर है। वाणीस्वरूप में रहने वाली माँ की शक्ति की पवित्रता की सुरक्षा हमारा कर्तव्य है।

हमें माँ सरस्वतीस्वरूपा वाणी का उपयोग दूसरों के सहायतार्थ करना चाहिए। हमारी वाणी निरर्थक न हो। हम दूसरों को आश्वस्त करने, प्रेरणा देने, मार्ग-दर्शन करने, शिक्षा देने तथा अन्य किसी रूप में सहायक होने में ही माँ की वाणी-शक्ति का उपयोग करें।

जिनके जीवन में माँ सरस्वती की कृपा की वर्षा होती है, उनके जीवन में स्थूल मलिन भाव अदृश्य हो जाते हैं। माँ की कृपा से ही वे जन अज्ञानरूपी अन्धकार से छुटकारा पाते हैं और अमरता, असीम ज्ञान तथा अनन्त आनन्द के परम धाम में पहुँचते हैं।

माँ सृष्टि-क्रिया का केवल प्रवाह ही नहीं, बल्कि उसका आदि भी हैं। इसी से हिन्दू-समाज में शुभारम्भरूप में भी माँ की पूजा की जाती है। जो भी कार्य आरम्भ होता है, वह माँ सरस्वती की ही कृपा से होता है, ऐसी मान्यता है। सर्वारम्भ की अधिष्ठात्री देवी माँ सरस्वती के साथ ही साथ प्रत्येक श्रद्धालु हिन्दू गणपति का भी पूजन करता है। गणपति को बुद्धि का प्रतीक माना गया है; जबकि माँ सरस्वती बुद्धि के क्रियात्मक स्वरूप का प्रतीक मानी जाती हैं। गणपति-पूजन जो 'श्री गणेश-पूजन' के रूप में अधिक लोकप्रिय है, विघ्नों के निवारणार्थ किया जाता है, जबकि सरस्वती जी के पूजन का केन्द्रीय उद्देश्य सदा यह रहता है कि वह सभी प्रारम्भ किये गये कार्यों को अपनी कृपा द्वारा सफलता प्रदान करें।

शुद्ध मनस्

शुद्धता नींव का वह पत्थर है, जिस पर मानव अपने जीवन का निर्माण करता है। शुद्धता व्यक्ति में आमूल परिवर्तन कर देती है जिससे वह अपनी निम्न प्रकृति से उठ कर दिव्य प्रकृति का बन जाता है-वह मन की निर्मलता, हृदय की पवित्रता तथा चित्त की शुद्धता से सम्पन्न हो जाता है। इससे उसे आन्तरिक शान्ति प्राप्त होती है। आन्तरिक शान्ति ही जीवन का परम सुख है।

सभी धर्मशास्त्रों की घोषणा है कि काम-क्रोध-लोभ मानव के शत्रु हैं। क्रोध काम से सम्बन्धित है। क्रोध इस शरीर के स्नायविक मण्डल पर, मन पर और यहाँ तक कि उच्च आत्मा के आध्यात्मिक तन्तुओं पर भी घोर अत्याचार करता है। यह काम का ही विकार है। काम ही क्रोध में रूपान्तरित हो जाता है। अतः अपने मन से इन मलों को निकाल फेंकिए। मन को निर्मल बनाइए।

इन शत्रुओं पर विजय पाने के लिए व्यक्ति को सहायता-हेतु और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं है। ये तीनों विकार निम्न गुणों अर्थात् रजस् और तमस् की उपज हैं। अतः आप अपने में सत्त्व को भर कर सम्पूर्ण जीवन को सात्त्विक बना, विशुद्ध हो कर इन विकाररूपी शत्रुओं का विनाश करने में समर्थ हो सकेंगे।

अपने अन्तःकरण से इन विकारों को निकाल फेंकने का एकमात्र उपाय है-जीवन को प्रत्येक दृष्टि से सात्त्विक रूप में यापन करना। इस प्रकार का सदाचारी जीवन व्यतीत करते हुए व्यक्ति काम और क्रोध से छुटकारा पा जायेगा।

मन और इन्द्रियों की पवित्रता तथा संयम मानव के सुखी जीवन के लिए पूर्वापेक्षित हैं। पहले मनस् शुद्ध हो, तभी शान्तिमय एवं सुखी जीवन का निर्माण होगा। सद्‌गुरुदेव के इस सूत्र को सदैव याद रखिए-

भले बनो, भला करो, दयालु बनो।
अभ्यास करो अहिंसा और सत्य-पवित्रता का,
यही है मूल मन्त्र दिव्य जीवन का।

दिव्य जीवन की आधारशिला है पवित्रता और पवित्रता की आधारशिला है शुद्ध मनस्। इसके लिए आवश्यक है-शुद्ध आचार-विचार।

आज आप जो कर्म करते हैं, उनके बीजों से आपके भावी जीवन के फल-फूल प्राप्त होते हैं। अपने विचारों, भावनाओं तथा दूसरों के साथ अपने व्यवहार के द्वारा आप अपनी अच्छी या बुरी नियत का निर्माण करते हैं। यह वैश्व नियम कार्य-कारण-नियम है। इस नियम के अनुसार आप अपने भाग्यविधाता स्वयं ही हैं तथा आप स्वयं ही अपने भविष्य का निर्माण करते हैं। आपका जीवन इस समय जैसा है, वह आपके निकट तथा दूरस्थ भविष्य को निर्धारित करता है। इस विचार को भली-भाँति समझ लें। इस महान् सत्य को स्वीकार करके अपनी बुद्धिमत्ता का परिचय दें। विपदाओं को निमन्त्रण न दें। ऐसे बीजों को बोने की मूर्खता न करें जिनके कड़वे फल आपको भविष्य में खाने पड़ें।

धर्मानुकूल जीवन-यापन करना मानव की सर्वांगीण समृद्धि तथा परम कल्याण की आधारशिला के रूप में स्थापित इस वैश्व नियम का पालन करना है। यह मानव का अभ्युदय तथा निश्रेयस है जिसमें उसका समग्र कल्याण तथा स्थायी धन्यता समाहित है।

अक्षय धरोहर

प्रत्येक राष्ट्र का आध्यात्मिक और धार्मिक साहित्य अक्षय धरोहर के रूप में संग्रहणीय होता है। हर राष्ट्र को अपनी सभ्यता और संस्कृति प्रिय होती है, जो वहाँ के प्राचीन आध्यात्मिक सिद्धान्तों का प्रतीक होती है। इनसे राष्ट्र की नींव दृढ़ होती है। जन-वर्ग अपने लिए प्रेरणा और उपदेश इनसे ही प्राप्त करता है। इनसे जन-मानस का अन्धकार दूर होता है तथा पृथ्वी प्रकाशमयी होती है। धर्म और संस्कृति पर आधारित ग्रन्थों में जो ईश्वरीय ज्योति की झाँकी मिलती है, उससे प्रत्येक परिवार की जीवन-यात्रा निर्विघ्न होती है।

ऐसी पुस्तकें आपको धर्मानुमोदित मार्ग-दर्शन कराती हैं। इनसे जीवन में आनन्द, शान्ति, प्रगति और सफलता मिलती है। इन अमूल्य निधियों में आपके जीवन का परमोल्लास और आनन्द छिपा होता है। जीवन के एक सिरे से दूसरे सिरे तक परिवर्तन लाने की इनमें क्षमता होती है। आध्यात्मिक पुस्तकों में दिव्य शक्ति होती है- कारण कि ये ईश्वर का वरदान होती हैं। आज के भौतिक युग में इन उपदेशों का अत्यधिक मूल्य है। इनकी सहायता से ही उचित मार्ग-निर्धारण किया जा सकता है। इनसे मानव अपनी दुर्बलताओं, दुष्प्रवृत्तियों व दुष्कृतियों का दमन करते और पवित्रता, सत्यता, सौम्यता, श्रद्धा आदि सद्गुणों का अर्जन करते हैं।

स्वामी शिवानन्द जी का नाम अध्यात्म-ज्ञान के सम्यक् प्रचार का पर्याय बन गया है। तीन सौ से अधिक पुस्तकों के यशस्वी लेखक के रूप में उन्होंने मानवता की जो अन्यतम सेवा की है, वह आज जग जाहिर है। अनावश्यक साम्प्रदायिक बन्धनों से मुक्त उनके उपदेशों में जन-मानस को छू लेने की क्षमता है। सर्वसाधारण के प्रति जागरूक रहते हुए भी वे **युवा-वर्ग के लिए विशेष रूप से जागरूक रहते थे।** सन् १९५० में अपनी अखिल भारतीय यात्रा में उन्होंने अनेक शिक्षालयों और विश्वविद्यालयों में उपदेश दिये और योगासन आदि के प्रदर्शन की व्यवस्था की। स्वामी जी महाराज सिर्फ इतना कह कर ही सन्तुष्ट नहीं हो गये कि **'युवा भावी राष्ट्र के निर्माता हैं।'** वे दिन-रात श्रम करके उन्हें उचित दिशा में मोड़ने का अथक प्रयास करते रहे।

कुमारी-वर्ग का दिशा-निर्धारण भी उनकी शिक्षा ही करती है। वर्तमान युग में शिवानन्द-साहित्य उनके लिए दैवी वरदान का काम करता है। स्वामी जी ने युवा-वर्ग से यथेष्ट श्रद्धा प्राप्त की। कारण कि उनके उपदेशों में अहम् भाव या महापुरुष होने का दम्भ नहीं था। वे सेवक और हिताकांक्षी के रूप में ही कुछ कहते थे। उन्होंने जो कुछ भी कहा, वह अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुआ। शिवानन्द-साहित्य-स्वाध्याय के उपरान्त कितने ही **किशोर-किशोरियों ने अपने जीवन को दिव्य जीवन बनाने में गौरव का अनुभव किया।** वस्तुतः स्वामी जी का साहित्य सुन्दर तथा सौम्य है। यह दिव्य जीवन का उद्बोधक और अखिल मानव-समाज का दिशा-निर्देशक है।

शिवानन्द-साहित्य में अनास्थावादियों को भी परिवर्तित कर देने की अपनी विशेषता है। इसका प्रमुख कारण है लेखक की दिव्य शक्ति। स्वामी जी का अभ्याह्वान बहुत ही प्रभावशाली है। उनकी लेखन-शैली बहुत ही सरल है। वे पाठक को सीधे सम्बोधित करते हैं और इस भाँति अपने दिव्य दिग्बोधक सन्देशों द्वारा उसके हृदय को स्पर्श कर लेते हैं। वे मलिनता तथा दूषणों पर विजय प्राप्त करने एवं दिव्य बनने के व्यावहारिक उपाय व साधन बताते हैं, जिससे पाठक के जीवन में धैर्य, आशा तथा प्रेरणा का संचार हो सके। शिक्षार्थियों के विकास-स्तर के अनुरूप ही वे उनसे सीधे बात करते हैं और उनके एक परम मित्र तथा हितैषी के रूप में उन्हें सत्परामर्श देते हैं। वे उन्हें प्रोत्साहित करने एवं उनमें नवीन आशा तथा श्रेष्ठता की भावना का संचार करने के लिए सरल-सीधा मार्ग अपनाते हैं। युवा-वर्ग के लिए स्वामी जी की पुस्तकें अत्यन्त रोचक तथा उनके विचार और चरित्र-परिष्कार के लिए अत्यन्त प्रभावशाली सिद्ध हुईं। शिवानन्द-साहित्य आधुनिक युग के लोगों के विचार और आदर्श के गठन में विशेष सक्रिय रहा है और अब भी है। इसमें ही इसकी गरिमा और महिमा है।

आध्यात्मिक ग्रन्थ गृहस्थ को सद्गृहस्थ बनाने में सहयोग देते हैं। ये बतलाते हैं कि चिरन्तन सुख विनाशशील पदार्थों में नहीं, वरन् एकमात्र ईश्वर में ही प्राप्त होता है। ये इस बात का संकेत करते हैं कि खाना, पीना और सोना ही वास्तविक जीवन नहीं है। ये सब काम को पशु भी कर लेते हैं। मानव-जीवन का उद्देश्य इससे कहीं ऊँचा है। मानव जीवन की यही विशेषता है कि यह भगवत्साक्षात्कार के द्वारा पूर्णता की खोज कर सकता है और उसे प्राप्त भी कर सकता है जिसके लिए गृहस्थाश्रम ही समुचित काल माना जाता है। यदि दैनिक जीवन साधनामय हो जाये, तो इसी में मानव-जीवन की सार्थकता है।

किशोर-किशोरियों से

आपको क्या करना है? कैसे जीवन जीना है? क्या पाने का प्रयत्न करना है? कौन से तथ्य हैं जो विद्यार्थी-जीवन को सुघढ़ सुन्दर बनाने के लिए आवश्यक हैं? ये कुछ प्रमुख प्रश्न हैं जो आपके समक्ष हैं। क्या कभी आपने इन प्रश्नों को स्वयं से पूछा और समाधान पाया ? अब कृपया ध्यान दे कर सुनें।

आपको अपने मन में एक स्पष्ट धारणा बनानी चाहिए कि आप अपना विकास और अपने को पूर्ण किस प्रकार करना चाहते हैं। आप जो बनना चाहते हैं, उसकी स्पष्ट कल्पना आपके मन में होनी चाहिए। इसके द्वारा आपको जीवन का स्पष्ट और निश्चित लक्ष्य प्राप्त होगा।

अतः आप यह भी जानते हैं कि जीवन के लक्ष्य की ओर बढ़ते हुए आपके लिए क्या सही है और क्या गलत, क्या वांछनीय है और क्या अवांछनीय, क्या स्वीकार्य है और क्या अस्वीकार्य? इस प्रकार की निश्चितता आपको आन्तरिक बल देती है, आपकी संकल्पशक्ति विकसित करती है और आपके व्यक्तित्व को सारवान् बनाती है। इसके पश्चात् आपके जीवन में नकारात्मक, सारहीन कोई वृत्ति रह ही नहीं जाती।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है जीवन के कार्यक्रम की समझदारी तथा विवेकपूर्ण ढंग से ऐसी योजना बनाना जो आकांक्षित पथ पर बढ़ने तथा जीवन के लक्ष्य तक क्रमशः पहुँचने में सहायक हो। ऐसा कार्यक्रम विद्यार्थियों तथा युवा पीढ़ी के समक्ष आने वाली समस्याओं तथा उनके जीवन में उत्पन्न होने वाली विषम परिस्थितियों से निबटने, दृढ़ मन से प्रलोभनों का सामना करने तथा उन पर विजय पाने तथा साहस और आत्म-विश्वास के साथ बाधाओं को पराजित करने के सम्बन्ध में एक कार्य-योजना भी प्रस्तुत करता है। यह सब करने की क्षमता आपमें पहले से ही विद्यमान है; परन्तु वह अन्तर्निहित अनभिव्यजित है। उसे प्रकट करके क्रियाशाली बनाना पड़ेगा। विवेकपूर्ण ढंग से बनाया हुआ कार्यक्रम और कार्य-योजना इन आन्तरिक क्षमताओं को प्रकटित करने और उनका विकास करने के लिए आवश्यक क्षेत्र तथा व्यावहारिक विधि प्रदान करती है।

अब हम उस तथ्य पर आते हैं जिस पर आपके जीवन के कार्यक्रम का उचित कार्यान्वयन निर्भर करता है। वह है स्वास्थ्य। स्वास्थ्य के बिना आप कुछ भी नहीं कर सकते। स्वास्थ्य के बिना न तो आप भली-भाँति अध्ययन कर सकते हैं, न चरित्र-निर्माण और न ही आप खेल-कूद की या सामाजिक क्रियाएँ कर सकते हैं, न ही घर के काम-काज में हाथ बँटा सकते हैं। स्वास्थ्य नियमित जीवन यापन है। यह आप जो कुछ भोजन खाते-पीते हैं, उससे ही नहीं बनता; प्रत्युत जो वस्तुएँ स्वास्थ्य के लिए हानिकारक हैं, उनसे बुद्धिमत्ता तथा सावधानीपूर्वक दूर रहने पर भी बनता है। स्वास्थ्य-रक्षा और बलवर्धन हेतु भोजन कीजिए, केवल स्वाद के लिए न कीजिए। जीने के लिए तथा सेवा करने के लिए खाइए। रात्रि में जल्दी सोयें और प्रातः जल्दी शय्या त्याग कर उठ जायें। स्वस्थ आदत डालिए। प्रतिदिन नियमित रूप से व्यायाम कीजिए। खान-पान में सन्तुलन रखिए। खूब चबा कर खायें। अधिक न खायें। यदि भूख न हो, तो न खायें। जो वस्तुएँ आपके अनुकूल न पड़ती हों, उनका सेवन न करें।

इसके उपरान्त आप अपनी शक्ति को सुरक्षित रखें। उसका व्यर्थ के कार्यों में अपव्यय न होने दें। खूब बातें करना, गप्प मारना, निरुद्देश्य इधर-उधर घूमना, चिन्तातुर रहना, बात-बात में क्रुद्ध हो जाना आदि ऐसे कार्य हैं जिनसे आपकी शक्ति का ह्रास होता है। वे आपकी स्नायविक शक्ति का अपव्यय करती हैं। स्वास्थ्य की दृष्टि से आपकी जो भी आदतें हानिकारक हैं, उन्हें त्याग दीजिए। अपनी संकल्प-शक्ति द्वारा ऐसी बुरी आदतों को जीत लें। आत्मसंयमी एवं इन्द्रिय-निग्रही बनें। सन्तुलित एवं व्यवस्थित जीवन जीएँ। स्वास्थ्य की रक्षा करें। शक्ति को जमा करें। शारीरिक और मानसिक बल का विकास करें और इस प्रकार सफल जीवन की आधारशिला स्थापित करें।

संसार के सभी पदार्थों से अधिक मूल्यवान् चरित्र को समझें। पूर्णतः सत्यनिष्ठ रहें। अपनी वाणी को अशिष्ट और रुक्ष न बनायें। आपकी वाणी स्पष्ट, विनम्र और प्रमुदित करने वाली हो। वाणी सरस्वती है। यदि

अशिष्टता और रुक्षता से सरस्वती अप्रसन्न हो गयी तो आप ज्ञान के क्षेत्र में आगे नहीं बढ़ सकेंगे। अहंकार, अभिमान और स्वार्थपरता को दूर कर दीजिए। ये तीनों मानव-जीवन के लिए अभिशाप हैं। ये अविद्या और लोभ से उत्पन्न होते हैं।

'जैसा बोवोगे वैसा काटोगे' कहावत की तरह आप जैसा सोचेंगे वैसा ही बन जायेंगे। आप निरन्तर जिसका चिन्तन और भावना करेंगे, अन्ततः उसका अनुभव करेंगे और उसे उपलब्ध भी हो जायेंगे। आपके आन्तरिक विचार ही आपको बाह्य कर्मों में प्रवृत्त करते हैं और बार-बार किये गये कर्म आदत बन जाते हैं। ये आदतें आपके स्वभाव के स्थायी गुण बन जाते हैं और आपका यह स्वभाव ही आपका चरित्र निर्माण करता है। आपका भविष्य और आपकी नियति आपके चरित्र के ही प्रत्यक्ष परिणाम हैं। इसे भली-भाँति समझ लीजिए और ध्यान में रखिए। इसी ज्ञान के अनुसार सोचिए और कर्म कीजिए। आपके आन्तरिक विचार ही आपकी मूल-नियति हैं। अतः अपने विचारों और भावनाओं पर दृष्टि रखिए। शिष्ट और सद्भावना सहित विचार कीजिए। आप श्रेष्ठ बन जायेंगे। आप महानता प्राप्त करेंगे और अपने जीवन को सार्थक बना लेंगे।

स्वाध्याय-प्रयोजन

प्रश्न- स्वामी जी! आध्यात्मिक साहित्य का क्या तात्पर्य है? इस साहित्य के परिशीलन से हम विद्यार्थियों को क्या-क्या लाभ प्राप्त हो सकते हैं?

उत्तर- आध्यात्मिक साहित्य का तात्पर्य केवल रामायण, महाभारत, श्रीमद्भगवद्गीता जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों से ही नहीं है, वरन् सन्त-महात्माओं तथा प्रज्ञा-प्राप्त महापुरुषों द्वारा रचित उन पुस्तकों से भी है जो पाठकों को समुन्नत बनाती हैं, श्रेयष्कर जीवन-यापन में उनकी सहायता करती हैं तथा ईश्वर की सन्निधि प्राप्त कराती हैं। उनके स्वाध्याय से आपको अत्यन्त आश्चर्यजनक लाभ प्राप्त होता है। इस साहित्य के उन्नत विचार आपमें प्रेरणा भरते तथा आपके युवा मस्तिष्क पर अपना अमिट प्रभाव छोड़ते हैं जिससे आपकी सम्पूर्ण आचार-विचार-शैली का गठन सर्वथा दिव्य तथा उच्च आदर्शों पर होता है।

दूसरे, अध्ययन से आपका मन सदा व्यस्त रहता है जिससे आपको आलस्य नहीं घेरता है। क्या आपने यह लोकोक्ति नहीं सुनी है- 'खाली मन शैतान का घर होता है?' यदि आप प्रमादी बन जायेंगे अथवा अश्लील साहित्य पढ़ेंगे, तो आपके मन में पतनकारी विचार घर कर लेंगे और वे दिन-प्रति-दिन बढ़ते ही रहेंगे। समय पा कर बुरे विचार आपके जीवन को विपथगामी बना देंगे और आप विपत्ति में पड़ जायेंगे। इस हेतु आपको सदैव समुन्नतकारी सत्साहित्य पढ़ना चाहिए।

तीसरे, अनवरत अध्ययन आपकी मानसिक शक्ति तथा सूक्ष्म विचारों को ग्रहण करने की आपकी क्षमता को विकसित करेगा। इससे आपमें उच्चतर श्रेणी की एकाग्रता का विकास होगा। आपके भावी जीवन के प्रत्येक अध्यवसाय में यह एकाग्रता सहायक होगी।

चतुर्थ, आपको ध्यान रहे कि पुस्तकें ज्ञान की खान हैं, और ज्ञान ही ऐश्वर्य है। उदाहरण-स्वरूप 'प्राथमिक चिकित्सा', 'घरेलू दवाइयाँ' जैसी पुस्तकें पढ़ने से आप स्वयं तो लाभकारी ज्ञान से सम्पन्न बनेंगे ही, साथ ही विपत्ति में पड़े हुए निर्धन व्यक्तियों की सेवा भी कर सकेंगे।

इसके अतिरिक्त उच्च विचारों, उच्च भावों तथा महापुरुषों की प्रेरणादायी जीवन-गाथाओं के सजीवन उपदेशों से समन्वित पुस्तकें मन के लिए आहार का काम करती हैं। ये पुस्तकें हर प्रकार के व्यक्तियों को-वृद्ध और युवा, सभी को समान रूप से नैतिक तथा आध्यात्मिक पोषण प्रदान करती हैं। विचार और भाव ही मनुष्य के चरित्र का निर्माण करते हैं। आप सब इस महान् सत्य से अवगत हैं कि मनुष्य जैसा सोचता है वैसा ही बन जाता है। इस भाँति शिष्ट जनों और महापुरुषों द्वारा रचित सद्ग्रन्थों के पारायण से मन विशुद्ध और उत्कृष्ट भावों से आपूरित हो जाता है। ये ग्रन्थ एक विशाल चरित्र और दिव्य स्वभाव वाले अभिजात पुरुष के रूप में अपने-आपको ढालने में आपकी सहायता करते हैं। इस प्रकार ऐसे ग्रन्थों का अध्ययन यशस्वी एवं महान् जीवन की आधारशिला बन जाता है।

प्रश्न : स्वामी जी! आप प्रतिदिन कितने घण्टे आध्यात्मिक ग्रन्थों के स्वाध्याय की सम्मति देते हैं?

उत्तर : यह स्पष्ट है कि विद्यार्थी अपने पाठ्यक्रम की पुस्तकों के अतिरिक्त अन्य पुस्तकों के अध्ययन में अधिक समय नहीं दे सकते। इन सब बातों में आपको सदा ही अपनी सहज बुद्धि का उपयोग करना चाहिए; क्योंकि दूसरों की अपेक्षा आप अपनी परिस्थिति को अधिक अच्छी तरह समझ सकते हैं। परीक्षा के दिनों में आपको स्वाध्याय की अधिक चिन्ता नहीं करनी चाहिए। उन दिनों आप अपनी दैनिक प्रार्थना तक ही अपने कार्यक्रम को सीमित रख सकते हैं। फिर भी सबको इस मुख्य सिद्धान्त पर तो अडिग रहना ही चाहिए कि उन्नायक, प्रेरणाप्रद और सुसंस्कारक आध्यात्मिक साहित्य के स्वाध्याय के लिए प्रतिदिन कुछ निश्चित समय अवश्यमेव रखना है। निःसन्देह स्वाध्याय की अवधि में समयानुकूल आवश्यक परिवर्तन किया जा सकता है।

स्वाध्याय के लिए समय: प्रातःकाल जो कुछ पढ़ेंगे, उसका मन पर इतना गम्भीर प्रभाव पड़ेगा कि सम्पूर्ण दिवस उन भव्य विचारों से अनुप्रेरित होगा। इसका सुखद परिणाम यह होगा कि यदि आप रात्रि-शयन से पूर्व (विद्यालय का कार्य समाप्त करने के अनन्तर) थोड़ा स्वाध्याय कर लेंगे, तो सौम्य विचारों और दिव्य भावनाओं से आपूरित मन के साथ निद्रा ले सकेंगे।

इस प्रकार आध्यात्मिक साहित्य प्रत्येक परिवार के लिए सहायक एवं प्रेरक होता है। शरीर की भाँति मस्तिष्क को भी आहार की आवश्यकता होती है। यदि पशु को पशुशाला में ही सुन्दर चारा खिलाया जाये, तो वह गन्दी वस्तु चुगने के लिए बाहर नहीं जायेगा। इसी प्रकार यदि मन को उच्च विचार रूपी खाद्य पदार्थ-जो कि आध्यात्मिक साहित्य में प्रचुरता से उपलब्ध है-प्राप्त हो जाये तो, उसकी रुचि अन्य प्रकार के साहित्य में न रहेगी।

यद्यपि ये ग्रन्थ मौन हैं, फिर भी इनमें जीवन के रूपान्तरण की अर्थात् जीवन को उज्ज्वल दिव्यत्व प्रदान करने की सक्रिय शक्ति है। महिला-जगत् के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण है जिनके उज्ज्वल चरित्र और भव्य व्यक्तित्व-निर्माण इन ग्रन्थों ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभायी है। हर एक को 'महाजनो येन गतः स पन्थाः' को अपने जीवन का सूत्र बना लेना चाहिए।

जीवन-आदर्श

प्रिय शिक्षार्थियो!

हमारी इस महान् संस्कृति में जीवन की चार अवस्थाएँ मानी जाती हैं-प्रारम्भिक अवस्था, विकास-अवस्था, पुष्पण-अवस्था और फलवती अवस्था। इन चार अवस्थाओं को क्रमशः तैयारी का काल, साधना-काल, प्रगति-काल तथा पूर्णता (फल-प्राप्ति) का काल भी कह सकते हैं। प्रथम अवस्था की सुव्यवस्था पर ही अन्य तीनों अवस्थाओं का समुचित विकास निर्भर करता है। आप लोगों का यह जीवन सही और सफल जीवन हेतु प्रारम्भिक तैयारी की अवस्था है। यह कृषक द्वारा खेत में हल चलाने और बीज बोने जैसा है। अब आप आसानी से समझ सकते हैं कि भविष्य में जो जिस प्रकार की फसल पाना चाहता है, उसके सन्दर्भ में इस जीवन का क्या अभिप्राय और महत्त्व है?

इसके अतिरिक्त आप जो महत्त्वपूर्ण भवन निर्माण करना चाहते हैं, यह काल उसकी नींव डालने के समान है। भवन की सुदृढ़ता और टिकाऊपन निश्चय ही नींव पर निर्भर करता है। आप इस नींव की अवस्था में है। आप बुद्धिमत्ता से सही तरीके से इस तरह तैयारी करें कि उसकी परिणति आपके परम कल्याण, परम हित तथा स्थायी सन्तोष और सुख में हो।

हमारी संस्कृति में **इस अवस्था को ब्रह्मचर्याश्रम या विद्यार्थी-जीवन कहते हैं।** यहाँ आप केवल इतिहास, भूगोल, अंकगणित आदि विषयों का ही ज्ञान अर्जित नहीं करते प्रत्युत मानव-स्वभाव का, सम्यक् व्यवहार का, आत्मानुशासन का, शुद्ध मानसिक विकास का, धर्म का, मनुष्य के कर्तव्यों तथा आपके, जगत् के और ईश्वर के बीच परस्पर सम्बन्ध का ज्ञान भी प्राप्त करते हैं। मैं दूसरी, तीसरी और चौथी अवस्था का वर्णन संक्षेप में करूँगा। तदुपरान्त उस आवश्यक प्रश्न को लूँगा कि किस प्रकार आप अपनी इस युवावस्था को अत्यधिक उपयोगी बना सकते हैं।

दूसरी अवस्था जिसे आप गृहस्थाश्रम के नाम से जानते हैं, वास्तव में वह अवस्था है जब व्यक्ति में धर्म-सम्बन्धी अपने समस्त ज्ञान को-उचित व्यवहार, सम्यक् कर्तव्य, गुण, आचरण, ईश्वर और मानव के पारस्परिक सम्बन्ध की परिपूर्णता से सम्बन्धित ज्ञान को व्यवहार में, क्रिया में लाने की धुन उत्पन्न हो जाती है। इसी काल में विद्यार्थी-जीवन में की हुई प्रारम्भिक तैयारी की जाँच और परीक्षा विविध परिस्थितियों, अनेकानेक प्रलोभनों, समस्याओं और स्थिति-परिवर्तन द्वारा की जाती है। यदि विद्यार्थी-काल में तैयारी कुशलतापूर्वक हुई है तो गृहस्थाश्रमी अपने आदर्शों पर स्थित रह सकता है और इस अवस्था में हर प्रकार के प्रलोभनों, बाधाओं, कठिनाइयों और परीक्षाओं की कसौटी पर खरा उतर कर अपने आन्तरिक महत्त्व को प्रमाणित कर सकता है, अपने आत्मबल को बढ़ा सकता है और अपने व्यक्तित्व में अतिरिक्त प्रौढ़ता ला सकता है। आत्मबल, धर्म और आदर्श व्यवहार वाला ऐसा व्यक्ति समाज के लिए वरदान, परिवार की प्रतिष्ठा और अपने निकटवर्ती लोगों के लिए प्रेरणादायक दृष्टान्त बन जाता है। उसका जीवन सदाशयता, शुद्धता और धर्म के लिए उत्साह उत्पन्न करता है।

वानप्रस्थ नामक तीसरी अवस्था में वह और प्रगति करता है तथा अपने ज्ञान में, अनुभवों में तथा अपने विकसित गुणों में शेष जन-समाज को उसके हितार्थ सहभागी बनाता है। युवाजनों के लिए वह पथ-प्रदर्शक, गृहस्थों के लिए प्रेरणादायक परामर्शदाता तथा सभी का निःस्वार्थ सेवक बन जाता है। तीसरे आश्रम का यही आशय और यही आदर्श है। **प्रथम अवस्था की कुशल तैयारी, दूसरी अवस्था में दत्तचित्त हो कर व्यावहारिक जीवन यापन करने तथा तीसरी अवस्था में शेष जनों को निःस्वार्थ भाव से सहभागी बनाने के फलस्वरूप प्राप्त चतुर्थ अवस्था संन्यास की आती है।**

इसमें मन शान्त, स्थिर और शुद्ध हो जाता है तथा हृदय निष्काम और एषणाओं से मुक्त हो कर पूर्ण आत्मसंयमी और धर्मनिष्ठ हो जाता है। संन्यास-जीवन की यह आदर्श अवस्था उससे पूर्व की तीनों अवस्थाओं को सम्यक् रूप में व्यतीत करने का फल होती है। इसमें व्यक्ति स्वतः ही अनायास ईश्वर-चिन्तन में लीन हो ईश्वर-अनुभव की ओर अग्रसर होता है। वह आन्तरिक अध्यात्म-जीवन की परम शान्ति और आत्मिक आनन्द की प्रचुर फसल काटता है और उस चरम लक्ष्य को प्राप्त करता है जिसके लिए उसे यह मानव-जन्म मिला है।

हिन्दू विवाह-एक आध्यात्मिक मिलन

(पूज्य स्वामी जी ने ये विचार आश्रम में आयोजित एक विवाहोत्सव के अवसर पर प्रकट किये थे।)

माँ गंगा के पावन तट पर आज आप सभी ने एक पवित्र संस्कार देखा जिसमें दो अजर-अमर अविनाशी आत्माओं का एक महत्त्वपूर्ण आध्यात्मिक मिलन हो चुका है। इन जीवात्माओं का इस पार्थिव तथा भौतिक जगत् में एक विशेष स्थान है। यह जीवन जीविकोपार्जन तक ही सीमित नहीं है, वरन् इसकी गति में तीव्रता तथा उत्थान

लाना आवश्यक है। जिस सांसारिक भूमिका में आज हम हैं, उससे उच्च और उच्चतर भूमिकाओं में हमें उठना है और अन्त में उससे भी ऊपर उठ कर हमें दिव्यता प्राप्त करनी है। इसीलिए इन दो जीवात्माओं का मिलन हुआ है। दोनों जीवन उज्ज्वल हों, दिव्य हों, सफल हों और परिणामस्वरूप बन्धु-बान्धवों तथा स्वजनों का भी हित हो, उनका कल्याण हो। उनके जीवन से अन्यों को प्रकाश मिले, मार्ग मिले, और मिले प्रेरणा जिससे औरों का जीवन भी ऊर्ध्वगामी बन सके।

इस मंगलमय अवसर पर वर-वधू का ध्यान मैं विशेष रूप से इस ओर आकर्षित करना चाहता हूँ कि इस संस्कार को हमें जीवन की एकांगी अथवा संकुचित दृष्टि से नहीं, वरन् आदि से अन्त तक एक व्यापक दृष्टि से देखना चाहिए तथा यह समझने का प्रयास करना चाहिए कि इस संस्कार का हमारे जीवन से क्या सम्बन्ध है। एक सनातनी हिन्दू के परिवार में सोलह संस्कार हुआ करते हैं, उन संस्कारों में से विवाह संस्कार एक है। मात्र विवाह ही तथा उसके द्वारा विषय भोगों में लगे रहना ही हमारा उद्देश्य नहीं है। जीवन का परम लक्ष्य, मुख्य उद्देश्य तथा केन्द्रीय गम्भीर अर्थ है-निज स्वरूप को पहचानना ।

अतः जीवन को साधना मान कर कटिबद्ध हो कर, पुरुषार्थ और परिश्रम के द्वारा; तितिक्षा, विचार और विवेक के द्वारा तथा आत्म-परीक्षण और आत्म-निरीक्षण के द्वारा जीवन-संग्राम में संघर्ष के लिए जुट जाना चाहिए। यह जीवन-क्षेत्र सेवा, प्रेम, दान, त्याग, दया तथा परोपकार का है। सदाचरण द्वारा अपने सनानत धर्म की और अपने आध्यात्मिक तथा नैतिक मर्यादाओं की रक्षा करनी चाहिए।

पल-पल, क्षण-क्षण यह शरीर क्षीण होता जा रहा है। काल भागता जा रहा है। काल कभी लौटता नहीं; अतः हमारा प्रत्येक कार्य मानवोचित होना चाहिए। हमारा प्रत्येक क्षण ईश्वर का स्मरण करने में व्यतीत होना चाहिए; तभी हमारे जीवन की सार्थकता है। धर्म, अर्थ और काम-ये तीनों साधन हैं, जिन्हें लक्ष्य प्राप्ति के लिए उपयोग में लाना चाहिए। किन्तु केवल कर्तव्य समझ कर तथा भगवान् का आदेश मान कर नैतिक मर्यादाओं की रक्षा तथा आत्मज्ञान के लिए 'धर्म', जीवन-निर्वाह तथा परिवार-पालन के लिए 'अर्थ' और सन्तानोत्पत्ति के लिए 'काम' आवश्यक है। हमारे धर्मशास्त्रों में इनका निषेध नहीं है, वरन् इनके नियमन की व्यवस्था है। अतः विवेक तथा विचार से इसकी सीमा निर्धारित की जानी चाहिए। प्रत्येक कर्म धर्म पर आधारित होना चाहिए।

सुख-शान्ति बनाये रखने के लिए जीवन को धार्मिक बनाना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक आपका व्यवहार तथा आपकी चेष्टाएँ तथा प्रवृत्तियाँ धार्मिक नहीं होंगी, समाज में कहीं-न-कहीं अशान्ति विद्यमान रहेगी। एक और एक मिल कर ग्यारह होते हैं। यह एक आध्यात्मिक साझा है। इसलिए गृहस्थाश्रम मोक्ष-प्राप्ति का सरल उपाय है, न कि उसके प्रतिकूल। हमारे मन में एक भ्रान्त धारणा घर कर गयी है कि मोक्ष प्राप्ति का कार्य केवल योगी, संन्यासी का ही है और गृहस्थाश्रम केवल भोग भोगने के लिए है। यह धारणा निर्मूल है, अहितकर है तथा खतरनाक है।

ब्रह्मचर्याश्रम के पश्चात् गृहस्थाश्रम की बारी आती है। ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचर्य का पूर्णरूप से पालन कर विद्याध्ययन करते हैं। तत्पश्चात् दो जीवात्माएँ विवाह-संस्कार कर पति-पत्नी के रूप में सामूहिक रूप से जीवन चलाने का व्रत लेते हैं। पति के साथ सास-ससुर तथा परिवार के अन्य व्यक्तियों की सेवा भी पत्नी का एक बड़ा कर्तव्य है। नित्यप्रति दोनों को अपने घर में गुरु, इष्टदेव तथा अन्यान्य देवी-देवताओं की विधिवत् पूजा-उपासना करनी चाहिए। अपने परिवार से ही परोपकार और सेवा-कार्य आरम्भ करो।

दो शरीर और एक आत्मा की भाँति रहना चाहिए। जिस परिवार में धर्माचरण होता है, वहाँ ईश्वर निवास करता है। जहाँ ईश्वर निवास करता है, वहाँ कलियुग रह ही नहीं सकता, वहाँ सदा-सर्वदा सुख, शान्ति तथा ऐश्वर्य

की वृद्धि होती रहती है। ऐसे घर के आस-पास का वातावरण भी शुद्ध रहता है। समाज के लिए ऐसा परिवार एक आदर्श बन सकता है। देवता भी ऐसे परिवार की पूजा करते हैं।

हमारी भावी सन्तान, जिस पर किसी देश की बागडोर रहती है, का लालन-पालन यदि ठीक वातावरण में न हो, तो उसका पूर्ण विकास नहीं हो पाता। आदर्श गृहस्थाश्रम में रहने से जो सन्तान होगी, वह आदर्श होगी और हमारी संस्कृति, सभ्यता तथा धर्म को सुरक्षित रखने वाली होगी। उससे समस्त संसार प्रभावित होगा। यदि प्रत्येक गृहस्थ आदर्श गृहस्थ बनने लगे, तो अन्ततोगत्वा समस्त संसार ही आदर्श जीवन व्यतीत करने लगेगा और परमानन्द को प्राप्त कर लेगा।

इस पुनीत अवसर पर मैं वर-वधू को हार्दिक आशीर्वाद देता हूँ कि परम पूज्य गुरुदेव श्री स्वामी शिवानन्द जी महाराज की कृपा सदा उन पर तथा उनके परिवार पर रहे! वे अपने जीवन में सुख, शान्ति, आनन्द और समृद्धि प्राप्त करें! उनका जीवन धन्य हो !

परिणय-प्रतिज्ञाएँ

नव-दम्पति ने अग्नि को तथा उपस्थित जन-समूह को साक्षी करके कुछ प्रतिज्ञाएँ ली हैं। ईश्वर उन्हें शक्ति दे जिससे कि वे उन प्रतिज्ञाओं को आचरण में ला सकें।

आदर्श विवाह की अमर प्रतिज्ञाएँ

- -हम दोनों व्रत, यज्ञ, दान आदि सत्कार्य साथ-साथ और एक-दूसरे की सम्मति से करेंगे।
- -देव-कार्य, तीर्थयात्रा और समाज सेवा में हम सहभागी रहेंगे।
- -अपने कुटुम्ब का पालन-पोषण तथा गृहस्थी के अन्य कार्य हम साथ-साथ मिल कर करेंगे।
- - हम जो भी धन और अन्न अपने श्रम या प्रयास से अर्जन करेंगे, उसका व्यय एक-दूसरे की सम्मति से करेंगे।
- -अपनी आजीविका कमाने के लिए हम नैतिक मार्ग का अवलम्बन करेंगे। हमारे व्यवसाय तथा हमारे उद्योग हमारे लिए केवल वित्तार्जन के साधन नहीं होंगे, बल्कि समाज-सेवा के सोपान होंगे।
- - हम एक-दूसरे के प्रति सद्भाव, प्रेम और परस्पर सम्मान के साथ भक्ति-भावना रखेंगे तथा जीवन-पर्यन्त हम दोनों पतिव्रत-धर्म एवं एकपत्नीव्रत पर अटल रहेंगे।
- -अब हम इस पवित्र अग्नि को साक्षी करके प्रतिज्ञा करते हैं कि हम मिल कर गृहस्थ-धर्म का पालन इस प्रकार करेंगे जिससे हमारे परिवार के साथ-साथ समाज का भी उत्थान हो।

गृहलक्ष्मी

पुण्यवान के गृहों में रहती बन कर स्वयं जो लक्ष्मी माँ!
सज्जन में श्रद्धा स्वरूप जो, कुलोत्पन्न में लज्जा माँ!
देवी! करो विश्व का पालन, हम सब करते नमो नमः ।

हिन्दू समाज में प्रत्येक गृह ही मंगल व श्री का मन्दिर है, वह गृहलक्ष्मी-रूपा भगवती लक्ष्मी का आवास स्थल है। महालक्ष्मी की शक्ति, महिमा तथा ओज गृहलक्ष्मी में सतीत्व, सच्चरित्रता एवं पतिव्रत धर्म के रूप में प्रकाशित होते हैं। इससे ही उसका ऐश्वर्य, यश तथा आन्तरिक प्रकाश गठित होता है। गृहलक्ष्मी की यह शक्ति विश्व-भर में अद्वितीय है। एक 'पातिव्रत्य' शब्द में ही स्त्री-धर्म की सम्पूर्ण भावना, सम्पूर्ण कल्पना समाहित है।

वैष्णवों की विचारधारा में लक्ष्मीदेवी वैकुण्ठाधिपति विष्णु की चिरसेविका मानी गयी हैं। वह स्वयं सर्वदा भगवान् विष्णु की पद-सेवा में रत रहती हैं। श्री लक्ष्मीदेवी-सम्बन्धी यह धारणा अतीव महत्त्वपूर्ण है और प्रत्येक आदर्श हिन्दू-नारी के लिए यह उचित है कि वह लक्ष्मीदेवी के इस आदर्श को स्मरण रखे और इसे अपने निजी जीवन में चरितार्थ करे।

मंगलसूत्र गृहलक्ष्मी का एक विशिष्ट मांगलिक चिह्न है। इस मंगलसूत्र को धारण करने का अभिप्राय है- सदैव मंगल भावनाओं एवं मंगल कामनाओं से संयुक्त रहना। मनसा वाचा-कर्मणा उसे मंगलमय रहना चाहिए। यही सूत्र है-मंगलमय जीवन का।

गृहलक्ष्मी के लिए ललाट पर तिलक (बिन्दी) भी मंगलचिह्न है। कुंकुम (बिन्दी) का तिलक उसे अपने दिव्य देवी स्वरूप के प्रति सजग, सतर्क तथा जागृत रखने के लिए है। यह बाह्य शोभा का अंग न हो कर आन्तरिक श्री का प्रतीक है।

यदि हम गृहलक्ष्मी के व्यक्तित्व से आगे बढ़ कर गृह के अन्दर-बाहर की ओर ध्यान दें, तो पायेंगे कि **स्वच्छता माँ लक्ष्मी के आवास का एक महत्त्वपूर्ण रूप है।**

इसके अनन्तर **दीपक की बारी आती है।** गोधूलि और सूर्यास्त का समय निकट आते ही हम देखते हैं कि प्रत्येक हिन्दू-घर में दीप प्रज्वलित कर उसे प्रणाम किया जाता है। इस भाँति अन्धकार के आरम्भ होने से पूर्व ही धवल प्रकाश का आगमन होता है। इस प्रथा का प्रत्येक हिन्दू-घर में अनुसरण किया जाता है; क्योंकि लोगों की यह मान्यता है कि प्रकाश अथवा ज्योति गृहक्षेत्र में प्रकट होने वाली महालक्ष्मी का एक स्वरूप है।

तदुपरान्त देव-देवी की पूजा को लें। देव-देवी की पूजा अत्यावश्यक है। जहाँ देवों की पूजा नहीं होती, वहाँ लक्ष्मी का आवास नहीं होता है। जहाँ देव-पूजन नहीं होता, ऐश्वर्य-लाभ होने पर भी, अन्त में उस घर में वैभव जाता रहेगा और दारिद्र्य, दुःख और सन्ताप निश्चय ही अपना आधिपत्य जमायेंगे।

गृहस्थाश्रम में **लक्ष्मी माँ का एक महत्त्वपूर्ण आविर्भाव दान** भी है। गृहस्थ को तो अन्य तीनों आश्रमियों के साथ, उसके पास जो कुछ भी है, उसमें भागीदार बना कर उपभोग करने का अपूर्व सौभाग्य प्राप्त है। अध्ययनरत ब्रह्मचारी, परिव्राजक संन्यासी, वानप्रस्थी-तीनों आश्रमियों को दान देने का दुर्लभ सद्भाग्य द्वितीय आश्रमी गृहस्थ को ही प्राप्त है। इस अवसर का लाभ उठाने से गृहक्षेत्र में लक्ष्मीदेवी का प्राकट्य होता है। दान के रूप में गृहस्थ विष्णु भगवान् की पोषक शक्ति का कार्य करता है। इससे धर्म की रक्षा होती है और अन्य आश्श्रमों की परम्परा भी बनी रहती है।

आतिथ्य-सत्कार माँ लक्ष्मी का एक महत्त्वपूर्ण स्वरूप है। जिस घर से अतिथि विमुख होता है, वहाँ लक्ष्मी निवास नहीं करती। जहाँ याचक और अतिथि का स्वागत होता है, वहाँ लक्ष्मीदेवी पूर्ण ओजस से रहती हैं और उस घर को आशीर्वाद देती हैं।

भारतीय गृह में और विशेषकर हिन्दू-गृह में अन्य दो वस्तुओं में भी माता लक्ष्मी जी का निवास माना जाता है। प्रथम वस्तु है-**तुलसी का पवित्र पौधा**। तुलसी के पौधे के बिना कोई घर नहीं रहना चाहिए; क्योंकि इस भूतल पर तुलसी के पौधे के रूप में साक्षात् लक्ष्मीदेवी निवास करती हैं।

लक्ष्मीदेवी का दूसरा स्वरूप जो दुर्भाग्य से सभी नगरों के हिन्दू गृहों से तीव्र गति से विलुप्त होता जा रहा है, वह है गौमाता। एक-दो पीढ़ी पूर्व हिन्दू घरों में प्रतिदिन गोमाता के पूजन की प्रथा प्रचलित थी। पवित्र गोमाता, जो एक समय हिन्दू मान्यतानुसार वैभव का एक महान् प्रतीक मानी जाती थी और जिस गोमाता में लक्ष्मी जी साक्षात् प्रकट रूप में विराजमान हैं, उस गोमाता की पूजा का अधिकाधिक अवसर ढूँढ़ते रहना चाहिए। 'गोवर्धनपूजा' एवं 'गोपाष्टमी' के पर्व इसी प्रकार के अवसर हैं।

इस प्रकार इस गौरवशाली देश भारतवर्ष में गार्हस्थ्य जीवन में लक्ष्मीदेवी की कल्पना सचमुच ही अद्‌भुत एवं अनुपम है। प्रतिवर्ष ज्योति-पर्व दीपावली को महालक्ष्मी पूजन के रूप में मनाने की प्रथा के पीछे यही गूढ़ातिगूढ़ रहस्य है कि प्रत्येक गृहदेवी अपने में निहित 'श्री' तथा भगवद्गीता में वर्णित दैवी सम्पद् एवं महालक्ष्मी-सरीखे सद्‌गुणों के अर्जन करने के प्रति सजग व सचेत रह कर अपने गौरव को अक्षुण्ण रखे। इसी में उसकी गरिमा है।

भारतीय सन्नारी

एक पतिव्रता भारतीय सन्नारी इस संसार में साक्षात् देवी-सम स्थान पाती है; क्योंकि सतीत्व माँ लक्ष्मी की ही एक शक्ति-विशेष है। इसके साथ ही इस आन्तरिक गुण-सतीत्व-की बाह्य अभिव्यक्ति का रूप शील है। हिन्दू नारी के लिए शील उसका अलंकार है। शील की रक्षा एक महदगुण है। इसी गुण के माध्यम से माँ लक्ष्मी स्वयं ही भारतीय नारी में आविर्भूत होती हैं।

गृह में गृहस्वामिनी के व्यक्तित्व, वाणी एवं व्यवहार में सुशीलता, मधुरता तथा चारुता के रूप में देवी लक्ष्मी अभिव्यक्त होती हैं। भारतीय आदर्श यही है। हिन्दू-भावना में मधुरता गृहलक्ष्मी के स्वभाव का अभिन्न अंग माना जाता है। यह बात सभी गृहदेवियों को स्मरण रखनी चाहिए, क्योंकि यही घर के सच्चे सुख, शान्ति और कल्याण के आविर्भाव में सहायक होती है।

हिन्दू-मानस में नारी माता का रूप है। सच्चे हिन्दू की चेतना में नारी का यह मातृरूप सदा ही निवास करता है। इस पुण्यभूमि में जन्म-ग्रहण करने का यही सौभाग्य है; क्योंकि इस भावना द्वारा हम ईश्वर के मातृस्वरूप का साक्षात्कार करने की उन्नत अवस्था तक आरोहण कर सकते हैं। ऐसा मातृभाव तथा सम्पूर्ण नारी जाति में माता का दर्शन अपने मन तथा हृदय को पवित्र करने का साधन है। इसके द्वारा हम इतनी उन्नतावस्था को प्राप्त हो सकते हैं, जहाँ दिव्य ज्योति से उद्भासित हो उठना सुलभ हो जाता है। परस्त्री विवाहिता हो या अविवाहित - उसके प्रति मातृभाव रखने में ही पुरुष का कल्याण निहित है।

धन्य है यह गृहस्थाश्रम

हमारी संस्कृति में धर्म और जीवन को अभिन्न माना गया है। इसलिए आध्यात्मिक जीवन की बुनियाद धर्म में है। धर्म के द्वारा न केवल आत्मज्ञान की प्राप्ति होती है, वरन् धार्मिक जीवन के अनुकरण से इस प्रापंचिक जीवन से मुक्ति और परम लक्ष्य की प्राप्ति-ये दोनों ही हित साधित होते हैं।

यदि हमारी संस्कृति में नित्य सत् को प्रथम मूल्य दिया है और उसकी प्राप्ति के लिए पवित्र और धार्मिक जीवन को दूसरा स्थान दिया है, तब यह स्वाभाविक है, यह सहज ही निर्णय होता है कि मानव जीवन का कोई भी पहलू अपवित्र नहीं है, अनाध्यात्मिक नहीं है। इस दृष्टि से सारा मानव-जीवन ऊर्ध्वगामी, भगवतोन्मुखी प्रक्रिया बन सके, इसके लिए आश्रम-धर्म के रूप में हमारे पूर्वजों ने बहुत सुन्दर रूपरेखा दी है।

पूर्वजों ने यह माना कि आध्यात्मिक जीवन की साधना के लिए जिस-जिस ज्ञान की आवश्यकता है-उसे प्रारम्भिक अवस्था में ही दे देना चाहिए। बालक को इस तरह का एक आदर्श बचपन में सौंप दें जिससे वह एक उत्तम मानव बन सके। स्वच्छ और आदर्श वातावरण में सन्तान का विकास हो। उसको इस तरह का शिक्षण दिया जाये कि हमारी संस्कृति के अनुसार जिस तरह का मानव जीवन होना चाहिए, उस तरह की प्रेरणा और ज्ञान उसे मिल सके। जिस तरह बालक को गुरुकुल में शिक्षण देने की व्यवस्था थी, उसी तरह बालिकाओं के लिए घर पर ही शिक्षण देने की योजना थी। माता-पिता अपने जीवन के आदर्श के द्वारा बालिका को भावी जीवन के लिए तैयार करते थे। इस तरह के चरित्रवान् व स्वस्थ युवक-युवतियाँ सादगीपूर्ण जीवन बिताने के लिए गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते थे। इतनी पवित्र एकता उनमें होती थी कि स्त्री को अर्धांगिनी का विशेषण ही हमारी संस्कृति ने दे डाला है। इसके साथ वह सहधर्मिणी भी कहलाती थी। पुरुष द्वारा सम्पन्न किये जाने वाले धार्मिक अनुष्ठानों की वह प्रेरणास्रोत होती थी और उनमें अपने पति की सहयोगिनी होती थी।

वर्तमान समय में भी जो पुरुषार्थ करना है, जो धर्म-कार्य करना है, उसमें ये दोनों (पति-पत्नी) परस्पर पूरक हैं। पति-पत्नी का सम्बन्ध केवल शारीरिक सहयोग नहीं है। यह दो परिवारों को एक में जोड़ने का केवल सामाजिक सहयोग भी नहीं है। हमारी संस्कृति में विवाह का जो सामाजिक पहलू है, वह गौण है। विवाह का मौलिक आधार यह है कि यह दो जीवात्माओं का एक आध्यात्मिक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को स्थापित करके इन दोनों को अपने लक्ष्य की प्राप्ति में आगे बढ़ना होता है। ऐसा माना जाता है कि तीनों आश्रमों को उबारने वाला गृहस्थाश्रम ही है।

गृहस्थाश्रम के बाद वानप्रस्थाश्रम आता है। यह जीवन की तीसरी अवस्था है। गृहस्थाश्रम में खेती की या वाणिज्य किया। लड़के बड़े हो गये, तब भी माता-पिता उन पर नियन्त्रण रखें, इस तरह की कल्पना हमारी संस्कृति में नहीं है। लड़के जब अपने पैरों पर खड़े हो गये तो पति-पत्नी धीरे-धीरे गृहस्थ से अवकाश प्राप्त कर लें, इस तरह की योजना हमारी संस्कृति में रही है।

इस तरह के वानप्रस्थी को भी सहारा देने वाला गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया हुआ उन्हीं का लड़का होता है। और विरक्त संन्यासी भी गृहस्थाश्रम पर ही निर्भर करते हैं। धन्य है यह गृहस्थाश्रम।

उत्कृष्टता-स्वधर्म-पालन की

आदर्श गृहस्थ-जीवन-यापन करने वाले दम्पति संन्यासी से किसी भी माने में कम नहीं, ऐसा हमारे शास्त्रों में बताया गया है। आपने कौशिक नामक तपस्वी, धर्मव्याध और एक आदर्श गृहिणी की कहानी सुनी होगी। तपस्वी ने अपनी तपस्या से, तितिक्षा से कई सिद्धियाँ प्राप्त कर ली थीं। वह प्रातःकाल तपस्या में लीन रहता। मध्याह्न में भूख लगती तो पास के गाँवों में जा कर भिक्षा प्राप्त कर लेता। इस भाँति कई वर्षों तक वह तपस्या करता रहा। एक बार वह किसी वृक्ष के नीचे तपस्या कर रहा था तो वृक्ष पर बैठे एक पक्षी ने उसके ऊपर बीट कर दी। तपस्वी को बड़ा क्रोध आया। आँखें खोल कर उसने पक्षी की ओर देखा तो पक्षी जल कर राख हो गया। इससे तपस्वी को अपनी तपस्या द्वारा प्राप्त सिद्धियों के कारण कुछ गर्व हो गया। बह तपस्या तो करता रहा; परन्तु उसका अज्ञान व अहंकार नहीं गया।

भगवान् ने सोचा कि इसके अहंकार को मिटाना चाहिए। एक दिन तपस्वी भिक्षा के लिए गाँव में गया। एक घर के सामने उसने भिक्षा के लिए आवाज लगायी। तीन बार आवाज लगाने पर भी भिक्षा देने कोई नहीं आया। तपस्वी को बड़ा क्रोध आया। यह कौन है जो मुझ जैसे तपस्वी की आवाज तक नहीं सुनता है? उसने जोर से चौथी बार आवाज लगायी तो गृहिणी भिक्षा ले कर उपस्थित हुई। तपस्वी ने भिक्षा लेने से इनकार कर दिया और क्रोध से बोला - "बताओ, तुमने इतनी देर क्यों कर दी? मैंने तीन-चार बार आवाज लगायी। क्या तुम्हें मेरी आवाज नहीं सुनायी दी?" उस गृहिणी ने बड़े शान्त भाव से कहा- "तपस्वी महाशय ! तुम मुझे उस पक्षी चिड़िया के समान न समझना।" ऋषि को बड़ा आश्चर्य हुआ कि उस समय जंगल में मेरे और चिड़िया के अतिरिक्त और कोई भी नहीं था, फिर इस रहस्य का पता इस गृहिणी को कैसे लग गया। वह पूछता है-"बताओ, तुम्हें कैसे मालूम हो गया?

तुमने क्या साधना की है?" गृहिणी ने कहा- "मेरी साधना है पतिदेव की सेवा, मेरे जो सास-ससुर हैं उनकी सेवा। मैंने न कोई प्राणायाम किया है, न कोई ध्यान किया है, न कोई योग-साधना की है। स्त्री होने के नाते आपके आवाज देते समय मैं पति की सेवा कर रही थी; **मैं अपने पतिव्रत-धर्म को पूरा करती हूँ।** इसलिए भिक्षा ले कर आने में विलम्ब हो गया।"

उस गृहिणी ने ऋषि को धर्म का रहस्य जानने के लिए एक कसाई (धर्मव्याध) के पास जाने की सलाह दी। ऋषि ने पहले तो सोचा कि कसाई से क्या ज्ञान मिलेगा ? परन्तु उसे यह अनुभव तो हो ही चुका था कि यह कोई साधारण गृहिणी नहीं है, इसलिए उसका परामर्श मान कर वह कसाई की खोज में निकला। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते एक किनारे पर उसका घर मिल गया। कसाई मध्याह्न में अपने अन्तिम ग्राहक निपटा रहा था। कसाई ने कहा- "महाराज जी! क्या आपको उस स्त्री ने भेजा है? आप थोड़ी देर रुक जाइए। मैं जरा अपना एक काम पूरा करके आ जाऊँ।" ऋषि ने अनुभव किया कि यह भी कोई साधारण कसाई नहीं है। मैंने अपने आने की कोई खबर नहीं भेजी थी, फिर भी इसे मेरे आने का पहले से ही पता है।

कसाई एक घण्टे बाद लौटा। ऋषि ने पूछा- "तुम्हारी साधना का क्या रहस्य है? मेरे आने से पहले ही तुम्हें कैसे पता चल गया कि मैं आ रहा हूँ?" कसाई ने कहा- **"मैं अपने माँ-बाप की सेवा करता हूँ। सच्चाई से अपना धन्धा करता हूँ।** कभी कोई छल-कपट अपने धन्धे में नहीं करता। अपने माता-पिता को प्रत्यक्ष देवता मान कर उनकी सेवा करता हूँ।" तब ऋषि को अनुभव हुआ कि भगवत्प्राप्ति या आध्यात्मिक साधना की कोई विशेष प्रविधि नहीं है, अभ्यास की कोई विशेष प्रक्रिया नहीं है। वह जीवन का एक गुण है। तकनीक के रूप में आप नाक पकड़ें, प्राणायाम करें, ध्यान करें; परन्तु अन्तर में अपवित्रता हो, विषमता हो तो सारी तकनीक व्यर्थ है। इससे जीवन में एक अन्तर्द्वन्द्व आ जाता है। इसलिए आपका सम्पूर्ण जीवन ही एक आध्यात्मिक प्रवृत्ति बन जाना चाहिए।

विद्यार्थी जीवन में ब्रह्मचर्य-धर्म को निभाना चाहिए। गृहस्थाश्रम में दाम्पत्य जीवन के धर्म का परिपूर्ण और आदर्श रूप से पालन करना चाहिए। इसी तरह अपने-अपने कर्तव्य का पालन करते हुए भगवान् को रिझा कर आत्म-ज्ञान प्राप्त करना चाहिए। इस दृष्टि से सभी चारों आश्रम समान रूप से पवित्र हैं। इनमें गृहस्थाश्रम इस दृष्टि से श्रेष्ठ है कि वह शेष तीन आश्रमों को सहयोग देने में समर्थ है। 'हम गृहस्थ में आ गये तो हमारा सब-कुछ नष्ट हो गया'- गलत विचार है। गृहस्थ और गृहिणी का संयोग आध्यात्मिक है, पवित्र है।

आदर्श गृहस्थी को विचार करना है कि हमारी संस्कृति में पंच-महायज्ञ अनुमोदित हैं। उसका यह तात्पर्य है कि समाज से हमने जो पाया है, वह हमारे ऊपर एक ऋण है। उसको लौटाना हमारे लिए अनिवार्य है। हमारे ऋषियों ने तपस्यां करके अनुभव द्वारा अनेक ग्रन्थों की रचना की। हम उनका अध्ययन-अध्यापन करें। यह ऋषि-यज्ञ है। इसी तरह विश्व का कल्याण करने के लिए सूक्ष्म रूप से अनेकों देवता कार्यरत हैं। उनको सन्तुष्ट करने के लिए हम हवन करें। यह देव-यज्ञ है। इसी तरह पितृ-यज्ञ है। हमने यह शरीर अपने माता-पिता द्वारा प्राप्त किया है। माता-पिता ने हमारी सेवा करके हमारी जीवन-यात्रा को आगे बढ़ाया है। अतः हम भी अपनी वंश-परम्परा को आगे बढ़ाते हुए उनकी सेवा करें।

सच्चरित्रता की शक्ति

सच्चरित्रता ही शक्ति है; चरित्र-बल ही जीवन है। चरित्रहीनता व्यावहारिक दृष्टि से मृत्यु ही है। स्त्री का वास्तविक आभूषण सच्चरित्रता है। आपके विचार व कार्य आपके चरित्र एवं भविष्य का निर्माण करते हैं। जैसा आप सोचेंगे, वैसा ही आप बनेंगे। यदि आप श्रेष्ठ विचारों का चिन्तन करेंगे, तो आप श्रेष्ठ बनेंगे तथा आपमें अच्छे चरित्र का विकास होगा। यदि आप बुरा सोचेंगे, तो आपका चरित्र दूषित हो जायेगा। यह प्रकृति का अकाट्य नियम है। इसी क्षण से अपने चिन्तन का तरीका तथा मानसिक दृष्टिकोण बदल डालें। सम्यक् चिन्तन विकसित करें तथा शुद्ध सात्त्विक इच्छा रखें। विचारों के रूपान्तरण से आपका जीवन रूपान्तरित हो जायेगा।

सद्कार्य करें। मन में दिव्य उदात्त विचारों को प्रश्रय दें और अपने चरित्र का निर्माण करें। घृणा को आमूल नष्ट कर दें। प्रेम-करुणा की आभा फैलायें। केवल शुद्ध प्रेम ही घृणा एवं शत्रुता पर विजयी हो सकता है। इस विश्व में सच्चा प्रेम ही एकता स्थापित करने की अमोघ शक्ति है। सभी वस्तुओं में आत्मा की उपस्थिति का अनुभव करें।

आपका चरित्र आपके मन द्वारा पोषित विचारों तथा आदर्शों के मानसिक चित्रों की गुणवत्ता पर निर्भर है। यदि आपके मन में श्रेष्ठ विचार और उदात्त आदर्शों के पवित्र चित्र हैं, तो आपका चरित्र पवित्र एवं श्रेष्ठ होगा। आपका व्यक्तित्व चुम्बकीय बन जायेगा। आप आनन्द, शक्ति तथा शान्ति के केन्द्र-बिन्दु हो जायेंगे। यदि आप अपने अन्दर दिव्य विचारों को विकसित करने का अभ्यास करें, तो सभी निम्न विचार धीरे-धीरे स्वतः नष्ट हो जायेंगे। जिस प्रकार सूर्य के समक्ष अन्धकार नहीं टिक सकता, उसी प्रकार दिव्य विचारों के समक्ष बुरे विचार नहीं टिक सकते।

विद्यालयों में नैतिक शिक्षा का प्रशिक्षण अवश्य होना चाहिए; परन्तु उससे अधिक महत्त्वपूर्ण है बच्चों का घर में प्रशिक्षण। यदि माता-पिता अपने बच्चों के चरित्र के विकास का ध्यान रखते हैं, तो नैतिक शिक्षा का प्रभाव उपजाऊ भूमि में अच्छे बीज बोने की तरह होगा। ऐसे प्रशिक्षित बच्चे ही आदर्श युवा बनेंगे।

अपने बच्चों के चरित्र के लिए एकमात्र माता-पिता ही उत्तरदायी हैं। माता-पिता का कर्तव्य है कि वे अपने बच्चों को बाल्यावस्था में ही अध्यात्म-शिक्षा प्रदान करें। वे स्वयं दिव्य जीवन व्यतीत करें और बच्चों को भी दिव्यता की ओर प्रेरित करें। जब बाल्यावस्था में ही धार्मिक संस्कार डाल दिये जाते हैं, तो उनकी जड़ें बहुत गहरी हो जाती हैं तथा वे पुष्पित तथा पल्लवित हो कर युवावस्था में फल देते हैं।

सद्‌गुण आपके जीवन का आधार बने! आपका उत्तम चरित्र हो! आप सब प्रत्येक काल में तथा प्रत्येक स्थिति में यह प्रार्थना करते रहिए, कराते रहिए-

हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।
शीघ्र सारे दुर्गुणों के दूर हमसे कीजिए।।

लीजिए हमको शरण में, हम सदाचारी बनें,
ब्रह्मचारी, धर्म-रक्षक सत्यव्रतधारी बनें

वीरव्रतधारी बनें।।
हे प्रभो! आनन्ददाता ज्ञान हमको दीजिए।

पुनीत संस्कार-प्रदात्री

आज के वैज्ञानिक इस बात से पूर्णतः सहमत हैं कि जन्म के एक वर्ष पूर्व से ही बच्चे का शिक्षण प्रारम्भ हो जाना चाहिए। इसलिए हमारे पूर्वजों ने गर्भिणी माता के वातावरण को मंगलमय बनाने का सुझाव दिया है जिसके लिए पिता का सक्रिय सहयोग अपेक्षित होता है। माता-पिता इस बात का पूर्णतया ज्ञान रखें और ध्यान करें कि अपनी सन्तान के भविष्य-निर्माण का बीजारोपण करने के लिए यह स्वर्णिम सुअवसर है। ऐसे समय का पूरा-पूरा सदुपयोग करें। सच्चरित्रता को आधार बना कर भावी सन्तति के जीवन-निर्माण हेतु सद्ग्रन्थों का अध्ययन करें। शुभ चिन्तन ही करें। सद्चर्चाएँ सुनें।

बालक प्रह्लाद की उच्चकोटि की भक्ति के पीछे उन सदुपदेशों का प्रभाव था जो उसकी (गर्भिणी) माता दैत्येश्वरी कयाधू को देवर्षि नारद द्वारा सुनाये गये थे। वीर अभिमन्यु की कथा से भला कौन परिचित न होगा ? जब वह अपनी जननी सुभद्रा की कोख में ही था तब (पिता) अर्जुन अपनी सहधर्मिणी सुभद्रा को रणकौशल सम्बन्धी अनेक कथा-वार्ताएँ सुनाया करते थे। उनमें से एक कथा चक्रव्यूह-भेदन की भी थी। चक्रव्यूह में प्रवेश करने का रहस्य तो उस गर्भस्थ बालक (अभिमन्यु) ने इतने ध्यान से सुना था कि ज्यों-का-त्यों उसे करके भी दिखा दिया।

मैं अपनी ही व्यक्तिगत बात कहूँ। मैं जो आज हूँ, उसके लिए महत्त्वपूर्ण कारण मेरी माँ हैं। सबसे बड़ी सन्तान होने के कारण मेरी माँ मुझसे बहुत प्रेम करती थीं। मुझे तो अपनी ममतामयी माँ के बिना नींद ही न आती थी। मैं उनके कण्ठ से लिपट कर गीत गाने तथा कहानियाँ कहने के लिए उनसे अनुनय-विनय किया करता था। वह भक्तिभाव से सन्त रैदास और मीराबाई आदि के भजन गातीं; उत्तराखण्ड के सन्त-महात्माओं की प्रेरणाप्रद गाथाएँ सुनातीं। सोते समय माँ के द्वारा सुनायी गयी इन कथाओं से ही ईश्वर-भक्ति आदि के सुसंस्कार मैंने प्राप्त किये।

आप माताएँ ही तो अपनी सन्तान की प्रथम गुरु हैं। आपको ही उनकी प्रथम प्रशिक्षिका होने का दायित्व वहन करना है। आपका प्रधान व्यक्तित्व मातृत्व का है। पत्नी तो आप मात्र एक ही पुरुष (पति) के लिए हैं- अग्नि देवता की साक्षी में। आपका भाव सदा यह होना चाहिए कि आप मानव की माता हैं; जगत् की जननी हैं। आपको एक सुमाता होने का उत्तरदायित्व निभाना है। एक सुमाता अपने कोमल करों से पलना झुलाते समय स्मरण रखती है कि वह सन्तति के भावी जीवन-निर्माण की नींव को सुदृढ़ से सुदृढ़तर बनाने में प्रयत्नशील है।

मानवता की माता होने के नाते मानव का शैशव आपकी गोद में है। इस प्रकार समग्र विश्व का भविष्य आपके हाथ में है। आपको चाहिए कि वे गर्भावस्था से ही, बच्चों की शैशवावस्था से ही जीवन का परम उद्देश्य- विश्व-प्रेम, विश्व-बन्धुत्व, वसुवैध कुटुम्बकम्, विश्व-शान्ति एवं विश्व-कल्याण का पाठ पढ़ायें। यह सब आप ही के द्वारा सम्भव है। आप ही पुनीत संस्कार-प्रदात्री हैं।

जिन परिवारों में सन्तान को माताओं का निर्देशन, पिताओं का संरक्षण व्यक्तिगत रूप से मिलता रहता है अर्थात् जो माता-पिता अपने दायित्व को भली प्रकार समझते हैं और सन्तानों के प्रत्येक क्रिया-कलाप का निरीक्षण करते हुए उन्हें युक्तिपूर्वक - प्रेमपूर्वक यथोचित प्रशिक्षण देते हैं, ऐसे ही आदर्श परिवारों में राष्ट्र-निर्माण की आधारशिलाएँ रखी जाती हैं। इस तथ्य से प्रमाणित होता है कि परिवार राष्ट्र की पौधशाला है।

सद्गुरुदेव स्वामी शिवानन्द जी ने निम्नांकित शब्दों में जो 'माता का धर्म' बताया है, वह आप सबके लिए मननीय है :

'यही धर्म माता का'

नारी माता है-जय जय राम
यशस्वान भारत में। सीता राम

यही धर्म माता का -जय जय राम
बच्चों को सँभालो, सीता राम

ठीक से ढालो; जय जय राम

अच्छे नागरिक उन्हें बनाओ। सीता राम

कथा सुनाना रामायण- भागवत की, जय जय राम
धर्मग्रन्थों की, सीता राम

भगवद्भक्तों- देशभक्तों की, जय जय राम
वीर बालक-बालिकाओं की। सीता राम

सन्तान को देना शिक्षा गीता के कर्मयोग की, जय जय राम
सदाचार की। सीता राम

वे बन जायेंगे-जय जय राम
आदर्श नागरिक देश के। सीता राम

भविष्य-निर्मात्री

शक्तिस्वरूपा माताओ!

बच्चों के पवित्र जीवन की, उनके भविष्य की निर्मात्री आप ही तो हैं। यह महत्त्वपूर्ण शक्ति आपके निज के व्यक्तित्व में, वात्सल्य में निहित है-जो ईश्वर-प्रदत्त है। तभी तो इस शक्ति का प्रभाव अमिट है। ऐसी अर्थपूर्ण एवं गम्भीर शक्ति का प्रयोग निरासक्त हो कर करते रहिए। इस मार्मिक तथ्य को जानते हुए भावी भारत का निर्माण आपको परिवार में बच्चों के उचित पालन-पोषण तथा समुचित शिक्षा द्वारा करना चाहिए।

जिस प्रकार एक कुम्भकार अथवा शिल्पकार चिकनी मिट्टी को ले कर अपने हाथ से उसको इच्छानुसार आकृति दे सकता है; उसी प्रकार माता अपने स्नेहशील वचन तथा मृदुल व्यवहार द्वारा अपनी सन्तति का चरित्र-निर्माण इच्छानुसार उसकी शैशवावस्था में ही कर सकती है। गृहरूपी शिक्षा केन्द्र में सन्तान के इस प्रारम्भिक शिक्षण में सबसे प्रभावशाली तत्त्व माता का व्यक्तिगत आदर्श ही होता है, जिसके द्वारा भावी नागरिक की सच्चरित्रता का बीजारोपण शुभ संस्कारों के रूप में किया जाता है।

देश की संस्कृति की सम्पोषिका एवं संरक्षिका नारी है। एक जीवात्मा आपके घर में जन्म लेता है तो उस पर प्रथम और सबसे गम्भीर प्रभाव घर के वातावरण का पड़ता है। इसमें भी पिता की अपेक्षा माता का प्रभाव सन्तान पर अधिक पड़ता है। अतः आप अपने दायित्व को समझिए। अपने निज स्वरूप को पहचानिए। आपका जो आत्मतत्त्व है, वही आपका शाश्वत स्वरूप है। वह आत्मतत्त्व न पुरुष है, न स्त्री, न नाम है न रूप। इस सत्य को एक क्षण के लिए भी न भूलें। जो महानतम आध्यात्मिक परम सत्ता है, उस अविनाशी तत्त्व को प्राप्त करने का अधिकार पुरुषों के साथ-साथ आपको भी है, जिसका सुस्पष्ट प्रमाण भारतीय संस्कृति के इतिहास के पन्नों में स्वर्णिम अक्षरों में अंकित है।

इस देश में जिस प्रकार महान् वेदान्ती ऋषि हुए हैं, उसी प्रकार उनके साथ बैठ कर आत्मतत्त्व की चर्चा करने वाली नारियाँ भी हुई हैं जिनमें गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा, चूडाला एवं मदालसा प्रमुख हैं। आपका सम्बन्ध इस महान् परम्परा के साथ है। प्राचीनकाल की तरह वर्तमान समय में श्री माँ शारदा (बंगाल), श्री रमा देवी (कर्नाटक),

श्री श्री आनन्दमयी माँ (बंगाल), सती गोदावरी (कन्याकुमारी स्थान-साकुरी), माता कृष्णाबाई (आनन्दाश्रम कन्हनगढ़) तथा जानकी माई आदि जीवन्मुक्त महिलाओं के ज्वलन्त उदाहरण हैं।

आप शक्ति स्वरूपा हैं; भगवती हैं, जननी हैं। इसलिए भारतवर्ष की सब भाषाओं में स्त्री को 'माता' कह कर सम्बोधित करते हैं। स्त्री के शक्ति-स्वरूप की भावना आप और किसी समाज में नहीं पायेंगी। भारत की संस्कृति में आपका जो यह गौरवशाली स्थान है, उसे आपको अच्छी तरह पहचानना चाहिए एवं उस गौरव को कायम रखना चाहिए।

आप दीपक की भाँति भारतीय संस्कृति की ज्योति को प्रज्वलित तथा सुरक्षित रखते हुए अमर बनायें। देवी भगवती की करुणामयी कृपा आपके जीवन में विकसित हो! आपको दिव्य ज्योति, शक्ति एवं ज्ञान प्राप्त हो! भगवती माँ आपको श्री, सफलता, निष्ठा, स्वस्थता एवं दीर्घायु प्रदान करें! आप शान्ति, आनन्द एवं अमृतत्व प्राप्त करें!

सर्वं शक्तिमयं

जो देवी है शक्ति रूप से व्याप्त सर्वभूतों में माँ। नमस्कार है, नमस्कार है, नमस्कार है उसे नमः ।। - दुर्गासप्तशती 'सर्वं ब्रह्ममयं' एवं 'सर्वं शक्तिमयं'- ये उपनिषदों की प्रमुख उद्‌घोषणाएँ हैं और ब्रह्मविद्या का सार हैं। दृश्य जगत् और परम सत्ता में अनन्य एकता तथा सृष्टि के समस्त नाम और रूपों में परम सत्ता की परिव्याप्ति-ये महान् सत्य बड़े सशक्त रूप में श्री गणेश जी के जीवन की घटनाओं द्वारा हमारे लिए उद्‌घाटित हुए हैं।

श्री गणेश को भारत में, विशेषकर दक्षिण भारत में, सिद्धि-विनायक, सिद्धि-दाता अर्थात् सभी कार्यों को पूर्ण करने वाले, उनमें सफलता देने वाले देव के रूप में माना जाता है। हमारे यहाँ प्रत्येक कार्य या त्यौहार को आरम्भ करने से पूर्व श्री गणेश जी की पूजा की जाती है।

श्री गणेश जी ने हमारे लिए जो एक महान् कार्य किया है, उसके कारण हम जीवन-पर्यन्त उनके सदा ऋणी रहेंगे। महर्षि वेदव्यास ने भारत के महान् धर्मग्रन्थ महाभारत की रचना समस्त मानव जाति को नीति, सदाचार और धर्म का जीवन व्यतीत कराने वाले धर्म का ज्ञान देने हेतु की थी। महाभारत में उन्होंने वह सभी कुछ प्रस्तुत किया है जो धर्म का ज्ञान प्राप्त करने के लिए आवश्यक था। इस प्रकार यह ग्रन्थ एक महान् ज्ञानकोष है। विशेषकर, इसका शान्तिपर्व तो ज्ञान की खान ही है।

कहा जाता है कि विश्व के महान् धर्मग्रन्थों में जो कुछ भी जानने योग्य है, वह सब महाभारत में निहित है और जो महाभारत में नहीं है, वह अन्यत्र कहीं नहीं हैं। श्री गणेश जी की ही कृपा है कि आज हमें यह ग्रन्थ उपलब्ध है। महर्षि वेदव्यास के प्रेरक क्षणों में उनकी वाणी से निकला कथन लिखने में कोई समर्थ नहीं था। ये श्री गणेश ही थे जिन्होंने बैठ कर श्री वेदव्यास के श्रीमुख से निःसृत वाङ्मय को लिपिबद्ध किया। यद्यपि महाभारत के प्रणेता श्री वेदव्यास जी हैं; परन्तु वास्तविक लेखक गणेश जी ही हैं जिहोंने हम मानवों को धार्मिक ज्ञान-सम्पदा दे कर कृतार्थ करने के उद्देश्य से हमारे ऊपर स्नेह-दृष्टि रखते हुए यह श्रमसाध्य कार्य सम्पन्न किया।

एक छोटी-सी कथा आती है-गणेश जी जब छोटे थे, उन्होंने खेल-खेल में एक दिन बिल्ली को बुरी तरह पीटा। इसके परिणाम से वे नितान्त अनभिज्ञ थे। खेल समाप्त होने के कुछ देर बाद जब वे अपनी माता देवी पार्वती के पास पहुँचे तो उन्होंने देखा कि माँ के शरीर पर गहरी चोटों के निशान पड़े हुए हैं। बालक गणेश यह देख कर घबरा गये और पूछने लगे-"माँ, यह क्या हुआ ? आप पर किसने प्रहार करके ऐसा घायल कर दिया ?" जननी ने उत्तर दिया- "और कौन कर सकता है? यह तो तुम्हारे अपने हाथों से हुआ है।" क्षण-भर के लिए गणेश जी की समझ में कुछ नहीं आया कि यह सब कैसे सम्भव हुआ ?

अतः वे माता पार्वती से बोले- "आपका आशय क्या है माँ? मैंने तो कभी आपको चोट नहीं पहुँचायी।" तब, माँ ने कहा- "वत्स! याद करो, दिन-भर में आज तुमने किसी जीव को चोट पहुँचायी है या नहीं?" गणेश जी ने पल-भर के लिए सोचा और तत्क्षण उन्हें बिल्ली के साथ खिलवाड़ के रूप में किया हिंसात्मक व्यवहार याद आ गया। वे बोले- "हाँ, माँ! एक बिल्ली को खेल-खेल में मैंने पीटा था, और तो कुछ नहीं किया।" माता पार्वती ने मुस्कराते हुए कहा- "क्या तुम नहीं समझते कि संसार में जितने भी नाम-रूप हैं, वह मैं ही हूँ? मैं ही वह सब नाम-रूप बन गयी हूँ। इस विश्व में मेरे सिवा कोई नहीं है। विश्व में सिवाय तुम्हारी माँ के और कुछ भी नहीं है।"

देवी पार्वती ने जब यह प्रकट किया तब यह सत्य उस बुद्धिनिधान देवबालक की अन्तश्चेतना में बैठ गया। उन्हें ज्ञात हो गया कि समस्त विश्व में जो नाम-रूप हैं, उनमें उनकी माता ही प्रव्यक्त हैं, तो समस्त स्त्री-जाति उनकी माता सदृश हो गयी।

श्री गणेश जी के ब्रह्मचर्य की इस कथा में एक विशेष अर्थ निहित है। यह हमारे समक्ष वेद और उपनिषदों, आगम और शास्त्रों के गुह्यतम ज्ञान का उद्‌घाटन करती है। यथा इस कथा द्वारा हमें बताया गया है कि इस विश्व में जो-कुछ भी है, वह सब सर्वशक्तिमान् प्रभु की शक्ति का ही व्यक्त रूप है- '**सर्वं शक्तिमयं जगत्।**'

हम भगवान् गणेश जी की उपासना करते हैं और उनसे यही प्रार्थना करते हैं कि वे हमें भी उसी प्रकार का आत्मबोध करायें जैसा उन्हें माता पार्वती से हुआ। अतः इस महासिद्धि विनायक से हम प्रार्थना करें कि हमारे ऊपर भी जगज्जननी देवी पार्वती कृपा करें और जिस प्रकार उन पर परम सत्य प्रकट हुआ है, उसी प्रकार हमारे समक्ष भी हो जिससे हमें यह बोध हो सके कि जो कुछ है, वह परमेश्वर ही है और वह परमेश्वर ही सम्पूर्ण नाम-रूप-मय जगत् बन गया है।

हे देवी! विद्याएँ सारी, भेद आपका बतलाती हैं,
जग की स्त्रीमात्र, सभी प्रतिबिम्ब आपका दर्शाती हैं,
हे अम्बे ! यह जग-पूरित है, सारा आपकी महिमा से
मैं क्या स्तुति करूँ, परे हो पर-स्तुति के। -

'-दुर्गा सप्तशती'

वास्तविक आनन्द

वास्तविक आनन्द का असली रहस्य है-सादगी और सन्तोष। अन्तर में छिपे आनन्द का अबाध अनुभव सादगी और सन्तोष द्वारा ही बाहर आता है। बहुत अधिक वस्तुओं तथा बहुत अधिक इच्छाओं के कारण आधुनिक जीवन में सादगी नहीं रह गयी है। अतः जीवन में यथाशक्ति सादगी और सन्तोष अपना कर चिन्तामुक्त रहने का अभ्यास कीजिए। इसके लिए उत्तम उपाय है-आध्यात्मिक जीवन-यापन।

सन्तोष रखिए। आप चाहे जैसी अवस्था में हों, उससे सुख ग्रहण करने की क्षमता रखिए और कहिए- 'इस परिस्थिति में मेरे अनुभव को बदलने की शक्ति नहीं है। परिस्थिति चाहे हर समय परिवर्तित होती रहे, मुझे परिवर्तन-रहित रहना है।' अतः सादगी और सन्तोष के रहने पर सौभाग्य का द्वार आपके लिए खुल जायेगा। यहाँ तक कि आपको लगेगा कि आप हर प्रकार से उऋण हो गये हैं। 'जब आवे सन्तोष धन सब धन धूरि समान।'

सादा और सन्तुष्ट जीवन मानव-निर्मित वस्तुओं पर उतना निर्भर नहीं करता जितना ईश्वर द्वारा निर्मित वस्तुओं पर। यदि आपके पास देखने वाली आखें हों तो सैकड़ों वस्तुएँ ऐसी हैं जो आपको आनन्द से भर सकती हैं। प्रातःकाल जब आप जागते हैं तो कक्ष से बाहर आइए और ऊषाकाल को देख कर प्रसन्न हो जाइए। सूर्य को उगता हुआ देख कर प्रसन्न होइए। चिड़ियों का चहकना आपको और भी आनन्दित करेगा। शीतल समीर भी प्रसन्नता का कारण बनेगा। इसी प्रकार आपकी प्रसन्नता का अन्त नहीं रहेगा। केवल इन साधारण-सी प्रतीत होने

वाली वस्तुओं यथा ऊषा-काल, सूर्योदय, पक्षियों का कलरव, बालकों की खिलखिलाहट, नीलाकाश, आकाश में विशाल जलपोत-सा विचरण करते हुए श्वेत मेघ, झूमते हुए छोटे-छोटे पुष्प आदि से सुख और आनन्द पाने की तकनीक सीख लीजिए।

दूसरों के सुख से भी आनन्दित होना सीखें। जब किसी को सुखी देखें, तो ईर्ष्या करने की अपेक्षा प्रसन्न हो जायें। केवल अपनी ही वस्तुओं के सौन्दर्य से ही नहीं वरन् सब पदार्थों के सौन्दर्य से आनन्द ग्रहण करने का यत्न करो। इस प्रकार आपमें सौन्दर्य-ग्रहण की निरपेक्ष क्षमता का विकास होगा। अपनी जेब से एक पैसा भी खर्च किये बिना आप देखेंगे कि आनन्द का अक्षय कोष आपके चतुर्दिक् आपके सब ओर बिखरा हुआ है। जब हम अनुभव करते हैं कि ईश्वर ने हमें सुखदायक कितनी-कितनी वस्तुएँ प्रदान की हैं, तो दिन-भर यदि उसका कृतज्ञता-ज्ञापन करते रहें, तब भी अधिक नहीं है।

अपने शरीर पर ही ध्यान दीजिए। आपके दो स्वस्थ नेत्र हैं। मान लीजिए, कोई कहता है : 'अच्छा, अपनी एक आँख मुझे दे दीजिए। उसके बदले में मैं आपको एक लाख रुपया दूँगा।' स्वस्थ मस्तिष्क वाला कोई भी व्यक्ति क्या इस प्रस्ताव को मानने के लिए प्रस्तुत होगा? मान लीजिए, आपको ही आपकी जिह्वा के बदले एक लाख रुपये दिये जाते हैं तो क्या आप देने को तैयार होंगे? इसका आशय है कि आपके पास लाखों-करोड़ों कीमत की वस्तुएँ हैं; परन्तु फिर भी यदि कुछ थोड़ी-सी चीजें हमारे पास नहीं हैं तो उनके लिए हम जमीन-आसमान एक करते रहते हैं। उस समय हमें इसका ध्यान बिलकुल नहीं रहता कि हमारे पास तो पहले से ही अकथनीय मूल्य की वस्तुएँ हैं। उसने तो हमें अपरिमित कोष दिया हुआ है, जिसमें स्वतः ही वास्तविक आनन्द निहित है।

नित्य सुख

नित्य सुख का अक्षय स्रोत अन्तर में विद्यमान है जो अपरिवर्तनशील है। ईश्वर करे, आप इस सत्य में जियें। यदि ऐसा हो तो मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ कि आपका जीवन सुख का प्रवाह हो जायेगा और इस प्रकार आपका जीवन अश्रुधारा की तरह न बह कर असीम आनन्द का अविराम प्रवाह बन जायेगा। यदि आप किंचिन्मात्र भी विचार करें कि ईश्वर ने आपको कितना अधिक दिया हुआ है, तो आपकी जीवन-दृष्टि ही बदल जायेगी। इन छोटे रहस्यों को जानिए। ये साधारण हैं; परन्तु अत्यधिक महत्त्व के हैं-अन्धकार के लिए जितना महत्त्व प्रकाश का है, उतने ही महत्त्वपूर्ण !

जीवन के माध्यम से जो अनुभव आता है, उसे स्वीकार करना सीखिए। शान्त और विवेकशील रहिए। परम सत्ता परा-बुद्धि से ही यहाँ का यह मानव-जीवन निर्देशित होता है और ये अनुभव उसी स्रोत से, परा-बुद्धि से आते हैं। अतः मनुष्य की तरह उन्हें स्वीकार करना सीखिए। जीवन के माध्यम से जो विपत्तियाँ आती हैं, उन्हें झेलिए।

चार प्रकार की अभिवृत्तियाँ हैं-यथा अपने से श्रेष्ठों के प्रति विनम्रतापूर्ण शिष्टता, समवयस्कों के प्रति मित्रता और भ्रातृत्व-भावना, अपने से नीचे के लोगों के प्रति दया और सहानुभूति तथा दुःखदायी दुझे और आपसे द्वेष-भाव रखने वालों के प्रति पूर्ण उपेक्षा- आपको ऐसे साधन प्रदान करेंगी कि आप सुखच्युत कभी भी नहीं होंगे। ये चारों मनोवृत्तियाँ आपमें होनी चाहिए जो नित्य सुख का साधन है।

सबसे बड़ी बात है कि कभी क्रोध के वशीभूत न हों। क्रोध ही ऐसा मनोभाव है जो अकेला ही सुख को नष्ट कर देता है, घर का पूर्ण सुख एक बार में ही पूर्णरूप से विनष्ट कर डालता है।

अपनी इन्द्रियों पर विवेकपूर्ण नियन्त्रण रखें। भौतिक सुख की, आनन्दोपभोग की इच्छा मानव-जीवन का एक स्वाभाविक अंग है; परन्तु यह केवल आपके मन और शरीर से ही सम्बन्धित है। इसी सन्दर्भ में हमें इन्हें जानना है। इतर जीवों की अपेक्षा श्रेष्ठ बुद्धि-युक्त होने के कारण यह क्षमता मानव में ही है कि वह अपनी इन्द्रियों पर नियन्त्रण कर सकता है। इस प्रकार नियन्त्रण रखने से ये इन्द्रियाँ सुख को नष्ट नहीं कर सकतीं। यदि आप इन्हें स्वयं पर हावी होने देंगे, इनके ऊपर लगे अनुशासन में ढील डाल देंगे, तो आप कभी सुख नहीं हो सकेंगे। यह विश्व का विधान है।

अपने जीवन को धर्मनिष्ठ, सत्यनिष्ठ और पवित्र बनायें। यदि पवित्रता को आप अपने जीवन में पथ-प्रदर्शक बना लेंगे, तो आपके अन्तर से अपराध-ग्रन्थियाँ और स्नायविक उलझनें दूर हो जायेंगी और मनोचिकित्सक की आपके लिए कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। जो स्वयं को धर्मनिष्ठ बना लेते हैं, वे सुख से पूर्ण रहते हैं। जिस प्रकार सुख दिव्य गुण है, उसी प्रकार धर्म भी परम दिव्यता से ही निकला है।

इससे भी अधिक आवश्यक है उस सर्व सुख, सर्व आनन्द और सर्व उल्लास के आन्तरिक महा-स्रोत की समीपता पाना। वही शाश्वत तत्त्व है जो आपके जीवन को आधार देता है। वही आपका आद्यन्त है। वही आपका सब-कुछ है। आधार, गन्तव्य, ध्येय सब वही है। प्रेम बढ़ा कर उसी के निकट रहिए। उस परमपिता से प्रेम कीजिए। सदैव उसका स्मरण कीजिए।

सच्चे अर्थ में कहा जाये तो सुख आपके ही अन्तर में निहित अपरिवर्तनशील अनुभव है। यह वह चेतना है जिसके कारण आप इतर जनों से मधुरता ग्रहण करते हैं। अकंगणित में १ संख्या जिस प्रकार कार्य करती है, यह चेतना भी उसी प्रकार कार्यशील रहती है। यदि १ संख्या विद्यमान है तो आप शून्य लगाते जाइए। यदि संख्या १ वहाँ नहीं है तो समस्त शून्य बिना किसी मूल्य के मात्र सिफर रह जाते हैं। इसी प्रकार केवल इस एक सत्ता की उपस्थिति से ही प्रत्येक पदार्थ में सुख देने की क्षमता पैदा हो जाती है। अतः इसे अपने जीवन का केन्द्र बनाइए। इसे अपने जीवन में सर्वोपरि महत्त्व का स्थान दीजिए। तब आप एक क्षण के लिए भी सुख से वंचित नहीं हो सकेंगे। उस सुख से आपको कोई भी दूर नहीं कर सकेगा; क्योंकि आप स्वयं ही वह सुख हैं। जब एक मछली को छोटे कटोरे से निकाल कर सागर में डाल कर मुक्त कर दिया जाता है तो वह सागर में रहते हुए तैर कर कहीं भी जा सकती है। अतः इस भ्रान्त जीवन के छोटे से कटोरे से निकल कर हम महान् विशाल सत्य में प्रविष्ट हों। सुख ईश्वर में ही है और वह मेरे अन्तर में है तथा वह और मैं एक हैं।

जो ब्रह्मानन्द की अवस्था को प्राप्त कर चुके हैं, उन सिद्ध महापुरुषों ने सुख प्राप्त करने का एक अचूक रहस्य बताया है और **वह रहस्य है भगवन्नाम।** उन्होंने भगवन्नाम का अभ्यास करने को कहा है। वे कहते हैं। 'नाम और नामी दो नहीं हैं। भगवान् का नाम और भगवान् एक ही हैं। यदि आपके अन्तर में परमात्मा का नाम है तो परमात्मा भी आपके अन्तर में है।' यह महान् आध्यात्मिक सत्य है। यदि आप इस बात को स्मरण रखते हैं और दिव्य नाम को अपना बना लेने का यत्न करते हैं, सदैव दिव्य नाम का जप करते हैं, उसका आह्वान करते हैं और दिव्य नाम के प्रवाह से निरन्तर आपूरित हैं, तो आप धन्य तथा भाग्यशाली हैं।

भक्ति का स्वरूप

भगवान् वेदव्यास-रचित अष्टादश पुराणों में श्रीमद्भागवतपुराण सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण पुराण है। यह महापुराण कहलाता है तथा विष्णु अथवा नारायण के रूप में व्यक्त भगवत्सत्ता की महिमा का चित्रण करता है। भगवान् विष्णु से हमारा सर्वाधिक सम्बन्ध है; क्योंकि वह ही इस जीवन, जगत् तथा विश्वजनीन कही जाने वाली प्रक्रिया को परिपुष्ट, सम्पोषित तथा उसकी रक्षा करने वाले हैं।

भागवतपुराण में सृष्टि के संरक्षक भगवान् विष्णु की महिमा का गुणगान है। इसके कुल बारह स्कन्धों में दशम स्कन्ध को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। दशम स्कन्ध पूर्णतः श्रीकृष्ण के रूप में हुए भगवान् विष्णु के सर्वोत्कृष्ट अवतार के विषय में है। श्रीकृष्ण यमुना-तट पर मथुरा में अवतरित हुए। जन्म के तुरन्त बाद ही उन्हें गोकुल-वृन्दावन ले जाया गया जहाँ उन्होंने अपना बाल्यकाल अलौकिक दिव्य लीलाएँ करते हुए व्यतीत किया। श्रीकृष्ण ने अनेक साधु-जनों की रक्षा की, बहुत से दुष्टों का विनाश किया तथा बहुसंख्यक लोगों में सच्चे आध्यात्मिक प्रेम की लहर सर्वप्रथम उत्पन्न की। उन्हीं सच्चे प्रेमियों ने भगवान् के प्रति भाव-प्रवण भक्ति प्रवर्तित की अथवा उसका बीज वपन किया तथा **भक्तियोग-साधना को जन्म दिया।** वह भारतवर्ष में भक्ति के परम पात्र हैं।

श्रीकृष्ण की लीलाएँ हमें भगवान् के प्रति अपने भक्तिमय पक्ष के प्रयोग के लिए पूर्ण क्षेत्र प्रदान करती हैं। श्रीकृष्ण का जीवन (विशेषकर उनकी वृन्दावन-लीला), गोपिकाओं का अतीन्द्रिय प्रेम तथा सरलहृदयी गोपबालकों का निश्छल सख्य भाव भगवान् कृष्ण के असंख्य भक्तों तथा मानव-हृदयों के लिए सदा प्रेरणास्रोत रहे हैं।

भगवद्भक्ति के पाँच भाव हैं-शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य तथा माधुर्य। इनमें माधुर्य भाव सर्वोपरि है। गोपी और श्रीकृष्ण के प्रेम में जो माधुर्य भाव था, वही पूर्णता की पराकाष्ठा तक पहुँचाता है। किन्तु ध्यान रहे कि यह प्रेम परमात्मा के प्रति मानवात्मा के प्रेम का प्रतीक है। गोपियाँ इस बात से भलीभाँति अवगत थीं कि भगवान् कृष्ण महान्, सर्वथा पूर्ण और भागवत सत्ता तथा अविनाशी तत्त्व के साक्षात् मूर्तरूप हैं।

इस ज्ञान के साथ उन्होंने श्रीकृष्ण को अपना प्रेम मुक्तहस्त से अर्पित किया। भागवत में वर्णित है कि किस प्रकार गोपियों के प्रेम की परीक्षा ली गयी और यह प्रेम उन्हें कितनी तपस्या, प्रार्थना तथा आराधना के उपरान्त उपलब्ध हुआ। उन्हें श्रीकृष्ण-प्रेम सहज ही नहीं, वरन् उग्र तपस्या से प्राप्त हुआ। वे शीतकाल में प्रातः चार बजे ही उठ कर यमुना नदी के हिमवत् शीतल जल में स्नान करती थीं। वे शीत से ठिठुरती हुई मन्दिर जातीं और वहाँ 'कात्यायनी देवी' की पूजा करती थीं। उन्हें यह समझाया गया था-"यदि तुम श्रीकृष्ण का प्रेम प्राप्त करना चाहती हो तो तुम्हें यह विशेष तपश्चर्या तथा अनेक सप्ताहों तक देवी की उपासना करनी होगी।' उन्होंने ऐसा ही किया तथा अहर्निश श्रीकृष्ण से निरन्तर प्रार्थना की- "हमें आप अपने प्रति सच्चे प्रेम का दान दें तथा प्रतिदान में आप हमें अपना प्रेम प्रदान करें।" भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा- "ठीक है। मैं शरदऋतु की पूर्णिमा-रात्रि को तुमसे मिलूँगा और तुम्हारे प्रेम का प्रतिदान करूँगा तथा तुम्हें दिव्य प्रेम की उज्ज्वलता के दर्शन कराऊँगा।"

शरत्पूर्णिमा की रात्रि को श्रीकृष्ण ने वंशी बजायी और उनकी मधुर वंशी के संगीत से पूर्णतः अभिभूत हो गोपियाँ वहा पहुँची। वह वंशीनाद दिव्य तथा स्वर्गिक था। शतशः गोपियाँ श्रीकृष्ण के चतुर्दिक् एकत्रित हो गयीं। वे बोले-"तुम सबको क्या हो गया है? तुम यहाँ क्यों आयीं? यहाँ आना तुम्हारे लिए उचित है क्या? क्या तुमने अपने-अपने पतिदेव, माता अथवा पिता की आज्ञा ली है? अपने पतिदेव, बच्चों तथा घर के काम-काज को छोड़ कर रात्रि के समय यहाँ आना तुम्हारी जैसी नवयुवतियों के लिए सर्वथा अनुचित है। संसार क्या कहेगा ? कृपा करके आप सब अपने-अपने घर चली जायें।"

इस भाँति वे उन गोपियों के उपदेष्टा बन गये। क्या आपको मालूम है कि गोपियों ने उन्हें क्या उत्तर दिया ? इसका परिशीलन आपको भागवत के दशम स्कन्धान्तर्गत रास पंचाध्यायी (अध्याय २९ से ३३) में करना चाहिए।

गोपियों ने कहा- "क्या आप यह सोचते हैं कि हमें पता नहीं है कि आप कौन हैं? हम अपने पतिदेव को छोड़ कर कैसे आ सकती हैं? अपने-अपने पति में वह क्या है जिससे हम प्रेम करती हैं? क्या वह अन्तर्यामी सत्ता नहीं है? हमारा प्रेम अन्तर्यामी सत्ता को पहुँचता है। और क्या आप सभी प्राणियों के अन्तर्यामी नहीं हैं? क्या आप विश्वरूप सत्ता नहीं हैं? क्या आप वह एकमात्र, अद्वितीय सत्ता नहीं हैं जो सभी प्रकार के प्रेम और भक्ति का पात्र है? यह जान कर ही हम आपके पास आयी हैं। आपके प्रेम में ही हमारा मोक्ष है। आपके प्रेम में ही हमारा उद्धार तथा निर्वाण है। आप परम तत्त्व हैं। आप अनन्त हैं।"।

इस भाँति उन्होंने श्रीकृष्ण को बतलाया कि उन्हें यह भलीभाँति विदित है कि वे किसके पास आयी हैं? वे जब श्रीकृष्ण के पास जाती हैं, तो उन्हें अपनी देह का संज्ञान नहीं रहता। अतएव यह वह प्रेम है जहाँ देहभाव नहीं रहता, शरीर की चेतना नहीं रहती। यही प्रेमाभक्ति का उत्कृष्ट स्वरूप है।

प्रकाश-स्तम्भ बनें

सौभाग्यशाली देवियो !

उठें! जागें और अध्यात्म-तत्त्व की इस लावण्यमयी ऊषा को देखें। विश्व के शुभ्र भाल रूपी आकाश पर 'दिव्य जीवन' का यह प्रतापी सूर्य किस प्रकार अपने अपूर्व रूप को प्रकट कर रहा है! अध्यात्म-तत्त्व को समझें। निष्काम सेवा द्वारा चित्त शुद्ध करें। अपने स्वभाव को सुन्दर और सौम्य बनायें। दानशील बनें और दिव्यत्व की प्राप्ति करें। प्रत्येक युग की महान् महिलाओं के आदर्शमय जीवन एवं चारु चरित्रों से प्रेरणा प्राप्त करें।

किसी भी राष्ट्र के भविष्य का, उसके विकास का, उसके उत्थान का आधारस्तम्भ है नारी। राष्ट्र-प्रगति की कुंजी नारी के ही हाथ में है; क्योंकि देश की प्रजा की प्रत्येक पीढ़ी में उसकी बाल्यावस्था में माता ही सर्वप्रथम प्रशिक्षिका रही है। घर ही बालभारती की प्रारम्भिक पाठशाला रहा है। देश की संस्कृति की सम्पोषिका है-सन्नारी।

अतः आप एक साधारण नारी नहीं हैं। आप हैं-भारतीय नारी। भारतीयता का आदर्श है-सन्नारी। और सन्नारी का आदर्श है-पवित्रता का आदर्श। इसका स्पष्ट अभिप्राय महनीय मातृत्व, सुशील स्त्रीत्व एवं निर्मल नारीत्व से है।

आपके व्यक्तित्व और व्यवहार को भारतीय संस्कृति का जीवन्त प्रतीक होना चाहिए। यही सही ढंग है- मातृभूमि, भारतभूमि, जन्मभूमि की उपासना का। वस्तुतः भारत जड़भूमि नहीं है-यह जागृत शक्ति है। इस शक्ति को आपको ही जीवित रखना है। आपका परम सौभाग्य है कि आप भारत माता की सन्तान हैं। आपके द्वारा मानवता को मार्ग-दर्शन मिलते रहना चाहिए। और आपकी पथ-प्रदर्शिका के रूप में है पुस्तक **'नारी और पतिव्रता का आदर्श'।**

जिस प्रकार आप भोजन करना नहीं भूलतीं, उसी प्रकार महान् नारियों की, ऋषि-मुनियों की प्रेरणादायी कृतियों के मनन को भी नहीं भूलें। इस अभ्यास को जीवन का प्रमुख कर्तव्य बन जाने दें। यह अभ्यास आपके जीवन में शान्ति, आनन्द और चित्त की समाहित अवस्था का प्रदायक होगा। यह आपके जीवन में आत्मसाक्षात्कार को अवतरित करके आपके निमित्त उत्कृष्ट निधि के रूप में प्रकट होगा।

महान् आत्माओं का महान् जीवन
करता है प्रेरित हमको ।
बनायें उन-जैसा महान्
हम अपने जीवन को ।।

आप सबके लिए शान्ति, पवित्रता, दिव्यता और आनन्द का द्वार उन्मुक्त हो! आप सब प्रकाश-स्तम्भ बनें, प्रकाश-पुंज बनें!

-स्वामी चिदानन्द

एक अद्वितिय देन-विश्व-प्रार्थना

(श्री गुरुदेव-विरचित विश्व-प्रार्थना)

हे स्नेह और करुणा के आराध्य देव!
तुम्हें नमस्कार है, नमस्कार है।
तुम सर्वव्यापक, सर्वशक्तिमान् और सर्वज्ञ हो।
तुम सच्चिदानन्दघन हो।
तुम सबके अन्तर्वासी हो।

हमें उदारता, समदर्शिता और मन का समत्व प्रदान करो।
श्रद्धा, भक्ति और प्रज्ञा से कृतार्थ करो।
हमें आध्यात्मिक अन्तःशक्ति का वर दो,
जिससे हम वासनाओं का दमन कर मनोजय को प्राप्त हों।
हम अहंकार, काम, लोभ, घृणा, क्रोध और द्वेष से रहित हों।
हमारा हृदय दिव्य गुणों से परिपूरित करो।

हम सब नाम-रूपों में तुम्हारा दर्शन करें।
तुम्हारी अर्चना के ही रूप में इन नाम-रूपों की सेवा करें।
सदा तुम्हारा ही स्मरण करें।
सदा तुम्हारी ही महिमा का गान करें।
तुम्हारा ही कलिकल्मषहारी नाम हमारे अधर-पुट पर हो।
सदा हम तुममें ही निवास करें ।

"नित्य अविनाशी तत्त्व की ओर प्रयाण ही जीवन-यात्रा है। जीवन स्वतः ही प्रगतिशील है- नित्यानुभूति की ओर। जीवन स्वयमेव एक पद्धति और गति है जो प्रतिदिन आपको पूर्णत्व की ओर अग्रसर करती है, जिसकी प्राप्ति आपका जन्मसिद्ध अधिकार है।" यह सन्देश है उनका, जिनकी हम आराधना करते हैं, जिनको हम गुरुदेव कह कर पुकारते हैं, जिन्होंने दिव्य कथाका प्रतिनिधित्व किया था। गुरुदेव ने उपर्युक्त विश्व-प्रार्थना को समस्त शिवाता से ओत-प्रोत कर मूर्तिमन्त किया। परम पवित्र सारतत्त्व उच्च जीवन, आध्यात्मिक जीवन, दिव्य जीवन, पूर्णत्व की ओर गतिशील जीवन, ज्ञानमय जीवन, आत्मप्रकाशन के जीवन से परिपूर्ण है यह विश्व-प्रार्थना। अदिव्यता की उपेक्षा करती हुई यह प्रार्थना हमें दिव्यता की ओर ले जाती है।

आइए! हम सब 'विश्व-प्रार्थना' का मनोयोगपूर्वक पारायण करें। यह प्रार्थना आपके लिए सदुपदेश-सूत्र बने ! यह आपके भावी जीवन की नित्य मित्र एवं मार्गदर्शिका बने। यह आपके हृदयस्थ भावनाओं एवं विचारों का, जीवन में सक्रिय रूप से अभिव्यक्त वाणी एवं क्रियाकलापों का मापक यन्त्र बने। स्वजीवन का निष्पक्ष विश्लेषण करने हेतु यह प्रार्थना मानक एवं कसौटी बने। अतः स्वजीवन एवं स्वक्रियाकलापों का परीक्षण करने की कसौटी के रूप में सद्गुरु शिवानन्द जी द्वारा प्रदत्त इस प्रार्थना को शिरोधार्य करें।

इस प्रार्थना का मनन कीजिए, चिन्तन कीजिए। इसे अपना नित्य सहचर बनाइए। इसमें आप सद्गुरु शिवानन्द जी के दर्शन करेंगे। इसमें योग-वेदान्त का सारतत्त्व सन्निहित पायेंगे। यह प्रार्थना निश्चय ही शुभाशीष, मंगल कामना एवं दिव्य सन्देश से परिपूर्ण है। सभी धर्मों का सारतत्त्व यही है कि सभी प्राणियों में दिव्यता का वास है। यही तथ्य, यही स्वीकृति, यही जागृति, यही आत्मज्ञान कि सभी में 'दिव्यता का वास है', आपको सत्यता, सत्यपथ की ओर उन्मुख करेगा। यह आपको दैवी सम्पदा से सम्पन्न कर ज्योति पथ की ओर गतिशील करेगा। आपके स्वभाव को दिव्यता में रूपान्तरित करेगा। फलतः आप पर प्रभु-कृपा का वर्षण होगा।

योग-वेदान्त का प्रत्येक पक्ष-आदि, मध्य, अन्त, मूलाधार, प्रगति और चरमोत्कर्ष (पराकाष्ठा) -सभी इस आश्चर्यमयी प्रार्थना में सन्निहित हैं। गुरुदेव-कथित दिव्य जीवन के सिद्धान्त (शिक्षा) को अपूर्व रूप में प्रस्तुत करती है-यह प्रार्थना।

धन्य हैं वे जिनका गुरुदेव से प्रत्यक्ष सम्पर्क रहा है। धन्य हैं वे जिन्होंने उनके साक्षात् दर्शन किये हैं। धन्य हैं वे जिनका हृदय उनके ज्ञानमय सदुपदेशों के प्रकाश से प्रकाशित हुआ है।

इस महान् आत्मा, सरल जीवन के आदर्श, विश्वात्मक जीवन के गुरु, कृपालु एवं दयालु सद्गुरु, श्रीमद्भगवद्गीता में वर्णित 'सर्व भूतहिते रतः' के अनुसार सर्व प्राणियों के हित में रत गुरु की आराधना करते हुए उनके साथ अपने-अपने आध्यात्मिक जीवन का नवीकरण कीजिए। इस प्रार्थना को, इस विश्व-प्रार्थना को हृदयंगम कीजिए।